

भारतीय वाङ्मयमें अनुमान-विचार

प्रास्ताविक

भारतीय तर्कशास्त्रमें अनुमानका महत्त्वपूर्ण स्थान है। चार्वाक (लौकायत) दर्शनके अतिरिक्त शेष सभी भारतीय दर्शनके अनुमानको प्रमाणरूपमें स्वीकार किया है और उसे परोक्ष पदार्थोंकी व्यवस्था एवं तत्त्वज्ञानका अन्यतम साधन माना है।

विचारणीय है कि भारतीय तर्कग्रन्थोंमें^१ सर्वाधिक विवेचित एवं प्रतिपादित इस महत्त्वपूर्ण और अधिक उपयोगी प्रमाणका संव्यवहार कबसे आरम्भ हुआ? दूसरे, ज्ञात सुदूरकालमें उसे अनुमान ही कहा जाता था या किसी अन्य नामसे वह व्यवहृत होता था? जहाँ तक हमारा अध्ययन है भारतीय वाङ्मयके निबद्धरूपमें उपलब्ध ऋग्वेद आदि संहिता-ग्रन्थोंमें अनुमान या उसका पर्याय शब्द उपलब्ध नहीं होता। हाँ, उपनिषद्-साहित्यमें एक शब्द ऐसा अवश्य आता है जिसे अनुमानका पूर्व संस्करण कहा जा सकता है और वह शब्द है 'वाकोवाक्यम्'^२। छान्दोग्योपनिषद्के इस शब्दके अतिरिक्त ब्रह्मविन्दूपनिषद्में^३ अनुमानके अङ्ग हेतु और दृष्टान्त तथा मंत्रायणी-उपनिषद्में^४ अनुमानसूचक 'अनुमीयते' क्रियाशब्द मिलते हैं। इसी तरह सुबालोपनिषद्में^५ 'न्याय' शब्दका निर्देश है। इन उल्लेखोंके अध्ययनसे हम यह तथ्य निकाल सकते हैं कि उपनिषद् कालमें अध्यात्म-विवेचनके लिए क्रमशः अनुमानका स्वरूप उपस्थित होने लगा था।

शङ्कर-भाष्यमें^६ 'वाकोवाक्यम्' का अर्थ 'तर्कशास्त्र' दिया है। डा० भगवानदासने^७ भाष्यके इस अर्थको अपनाते हुए उसका तर्कशास्त्र, उत्तर-प्रत्युत्तरशास्त्र, युक्ति-प्रतियुक्तिशास्त्र व्याख्यान किया है। इन (अर्थ और व्याख्यान)के आधारपर अनुभवगम्य अध्यात्मज्ञानको अभिव्यक्त करनेके लिए छान्दोग्योपनिषद्में व्यवहृत 'वाकोवाक्यम्'को तर्कशास्त्रका बोधक मान लेनेमें कोई विप्रतिपत्ति नहीं है। ज्ञानोत्पत्तिकी प्रक्रियाका अध्ययन करनेसे अवगत होता है कि आदिम मानवको अपने प्रत्यक्ष (अनुभव) ज्ञानके अविसर्वादित्वकी सिद्धि अथवा उसकी सम्पुष्टिके लिए किसी तर्क, हेतु या युक्तिकी आवश्यकता पड़ी होगी।

प्राचीन बौद्ध पाली-ग्रन्थ ब्रह्मजालसुत्तमें^८ तर्की और तर्क शब्द प्रयुक्त हुए हैं, जो क्रमशः तर्कशास्त्री तथा तर्कविद्याके अर्थमें आये हैं। यद्यपि यहाँ तर्कका अध्ययन आत्मज्ञानके लिए अनुपयोगी बताया गया है,

१. गौतम अक्षपाद, न्यायसू० १।१।३; भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी।

२. ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि ... वाकोवाक्यमेकायनं ... अध्येमि।

—छान्दो० ७।१।२; निर्णयसागर प्रेस बम्बई, सन् १९३२।

३. 'हेतुदृष्टान्तवर्जितम्'।—ब्रह्मविन्दू० श्लोक ९; निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३२।

४. ... बहिरात्मा गत्यन्तरात्मनानुमीयते।—मंत्रायणी० ५।१; निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३२।

५. 'शिक्षा कल्पो'... 'न्यायो मीमांसा'...।—सुबालोपनिष० खण्ड २; प्रकाशन स्थान व समय वही।

६. वाकोवाक्यं तर्कशास्त्रम्।—आ० शङ्कर, छान्दोग्यो० भाष्य ७।१।२, गीताप्रेस, गोरखपुर।

७. डा. भगवानदास, दर्शनका प्रयोजन पृ. १।

८. 'इध, भिक्खवे, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा तक्की होति वीमंसी। सो तक्कपरियाहृतं वीमंसानु-चरितं'...।—राय डेविड (सम्पादक), ब्रह्मजालसु० १।३२।

किन्तु तर्क और तर्की शब्दोंका प्रयोग यहाँ क्रमशः कुतर्क (वितण्डावाद या व्यर्थके विवाद) और कुतर्की (वितण्डावादी)के अर्थमें हुआ ज्ञात होता है। अथवा ब्रह्मजालसुक्तका उक्त कथन उस युगका प्रदर्शक है, जब तर्कका दुरुपयोग होने लगा था। और इसीसे सम्भवतः ब्रह्मजालसुक्तकारको आत्मज्ञानके लिए तर्कविद्याके अध्ययनका निषेध करना पड़ा। जो हो, इतना तो स्पष्ट है कि उसमें तर्क और तर्की शब्द प्रयुक्त हैं और तर्कविद्याका अध्ययन आत्मज्ञानके लिए न सही, वस्तु-व्यवस्थाके लिए आवश्यक था।

न्यायसूत्र^१ और उसकी व्याख्याओंमें^२ तर्क और अनुमानमें यद्यपि भेद किया है—तर्कको अनुमान नहीं, अनुमानका अनुग्राहक कहा है। पर यह भेद बहुत उत्तरकालीन है। किसी समय हेतु, तर्क, न्याय और अन्वीक्षा ये सभी अनुमानार्थक माने जाते थे। उद्योतकरके^३ उल्लेखसे यह स्पष्ट जान पड़ता है। न्याय-कोशकारने^४ तर्कशब्दके अनेक अर्थ प्रस्तुत किये हैं। उनमें आन्वीक्षिकी विद्या और अनुमान अर्थ भी दिया है।

वाल्मीकि रामायणमें^५ आन्वीक्षिकी शब्दका प्रयोग है जो हेतुविद्या या तर्कशास्त्रके अर्थमें हुआ है। यहाँ उन लोगोंको 'अनर्थकुशल', 'बाल', 'पण्डितमानी' और 'दुर्बुध' कहा है जो प्रमुख धर्मशास्त्रोंके होते हुए भी व्यर्थ आन्वीक्षिकी विद्याका सहारा लेकर कथन करते या उसकी पुष्टि करते हैं।

महाभाग^६ तर्क आन्वीक्षिकीके अतिरिक्त हेतु, हेतुक, तर्कविद्या जैसे शब्दोंका भी प्रयोग पाया जाता है। तर्कविद्याको तो आन्वीक्षिकीका पर्याय ही बतलाया है। एक स्थानपर^७ याज्ञवल्क्यने विश्वावसुके प्रश्नोंका उत्तर आन्वीक्षिकीके माध्यमसे दिया और उसे परा (उच्च) विद्या कहा है। दूसरे स्थलपर^८ याज्ञवल्क्य राजर्षि जनकको आन्वीक्षिकीका उपदेश देते हुए उसे चतुर्थी विद्या तथा मोक्षके लिए त्रयी, वार्ता और दण्डनीति तीनों विद्याओंसे अधिक उपयोगी बतलाते हैं। इसके अतिरिक्त एक अन्य जगह^९ शास्त्रश्रवणके अनधिकारियोंके लिए 'हेतुदुष्ट' शब्द आया है, जो असत्य हेतु प्रयोग करनेवालोंके ग्रहणका बोधक प्रतीत होता है। ध्यातव्य है कि जो व्यर्थ तर्कविद्या (आन्वीक्षिकी) पर अनुरक्त हैं उन्हें महाभारतकारने^{१०} वाल्मीकि रामायणकी तरह पण्डितक, हेतुक, और वेदनिन्दक कहकर उनकी भर्त्सना भी की है। तात्पर्य यह कि तर्कविद्याके सदुपयोग और दुरुपयोगकी ओर उन्होंने संकेत किया है। एक अन्य प्रकरणमें^{११} नारदको

१. अक्षपाद गौतम, न्यायसू० १।१।३, १।१।४०।

२. वात्स्यायन, न्यायभाष्य १।१।३, १।१।४०; उद्योतकर, न्यायवा. १।१।३, १।१।४०।

३. अपरे त्वनुमानं तर्क इत्याहुः। हेतुस्तर्को न्यायोऽन्वीक्षा इत्यनुमानमाख्यायत इति।—उद्योतकर, न्यायवा०, १।१।४०; चौखम्बा विद्याभवन, सन् १९१६।

४. भीमाचार्य (सम्पादक), न्यायकोश, 'तर्क' शब्द, पृ० ३२१, प्राच्यविद्यासंशोधनमन्दिर, बम्बई, सन् १९२८।

५. वाल्मीकि, रामायण, अयो० का. १००।३८, ३९, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि. सं. २०१७।

६. व्यास, महाभारत, शान्तिपर्व २१०।२२; १८०।४७; गीताप्रेस, गोरखपुर, वि. सं. २०१७।

७. वही, शा० प० ३१८।३४।

८. वही, शा० प० ३१८।३५।

९. वही, अनुशा० प० १३४।१७

१०. वही, शा० प० १८०।४७।

११. व्यास, महाभा० सभापर्व ५।५, ८।

पंचावयवयुक्त वाक्यके गुणदोषोंका वेत्ता और 'अनुमानविभागवित्' बतलाया है। इन समस्त उल्लेखोंसे अवगत होता है कि महाभारतमें अनुमानके उपादानों और उसके व्यवहार की चर्चा है।

आन्वीक्षिकी शब्द अनुमानका बोधक है। इसका यौगिक अर्थ है अनु—पश्चात् + ईक्षा—देखना अर्थात् फिर जाँच करना। वात्स्यायनके^१ अनुसार प्रत्यक्ष और आगमसे देखे-जाने पदार्थको विशेष रूपसे जाननेका नाम 'अन्वीक्षा' है और यह अन्वीक्षा ही अनुमान है। अन्वीक्षापूर्वक प्रवृत्ति करनेवाली विद्या आन्वीक्षिकी—न्यायविद्या—न्यायशास्त्र है। तात्पर्य यह कि जिस शास्त्रमें वस्तु-सिद्धिके लिए अनुमानका विशेष व्यवहार होता है उसे वात्स्यायनने अनुमानशास्त्र, न्यायशास्त्र, न्यायविद्या और आन्वीक्षिकी बतलाया है। इस प्रकार आन्वीक्षिकी न्यायशास्त्रकी संज्ञाको धारण करती हुई अनुमानके रूपको प्राप्त हुई है। डा० सतीशचन्द्र विद्याभूषणने^२ आन्वीक्षिकीमें आत्मा और हेतु दोनों विद्याओंका समावेश किया है। उनका मत है कि सांख्य, योग और लोकायत आत्माके अस्तित्वकी सिद्धि और असिद्धिमें प्राचीन कालसे ही हेतुवाद या आन्वीक्षिकीका व्यवहार करते आ रहे हैं।

कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें^३ आन्वीक्षिकीके समर्थनमें कहा गया है कि विभिन्न युक्तियों द्वारा विषयोंका बलाबल इसी विद्याके आश्रयसे ज्ञात होता है। यह लोकका उपकार करती है, दुःख-सुखमें बुद्धिको स्थैर्य प्रदान करती है, प्रजा, वचन और क्रियामें कुशलता लाती है। जिस प्रकार दीपक समस्त पदार्थोंका प्रकाशक है उसी प्रकार यह विद्या भी सब विद्याओं, समस्त कार्यों और समस्त धर्मोंको प्रकाशिका है। कौटिल्यके इस विवेचन और उपर्युक्त वर्णनसे आन्वीक्षिकी विद्याको अनुमानका पूर्वरूप कहा जा सकता है^४।

मनुस्मृतिमें^५ जहाँ तर्क और तर्की शब्दोंका प्रयोग मिलता है वहाँ हेतुक, आन्वीक्षिकी और हेतु-शास्त्र शब्द भी उपलब्ध होते हैं। एक स्थानपर^६ तो धर्मतत्त्वके जिज्ञासुके लिए प्रत्यक्ष और विविध आगम-रूप शास्त्रके अतिरिक्त अनुमानको भी जाननेका स्पष्ट निर्देश किया है। इससे प्रतीत होता है कि मनुस्मृति-कारके समयमें हेतुशास्त्र और आन्वीक्षिकी शब्दोंके साथ अनुमान शब्द भी व्यवहृत होने लगा था और उसे असिद्ध या विवादापन्न वस्तुओंकी सिद्धिके लिए उपयोगी माना जाता था।

षट्खण्डागममें^७ 'हेतुवाद', स्थानाङ्गसूत्रमें^८ 'हेतु', भगवतीसूत्रमें^९ 'अनुमान' और अनुयोगसूत्रमें^{१०}

१. प्रत्यक्षागमाश्रितमनुमानं साङ्ख्यीक्षा। प्रत्यक्षागमाभ्यामीक्षितस्यान्वीक्षणमन्वीक्षा। तथा प्रवर्तत इत्यान्वीक्षिकी न्यायविद्या न्यायशास्त्रम् ।—वात्स्यायन, न्यायभा० १।१।१; पृ० ७।

२. A History of Indian Logice, Calcutta University 1921, page 5.

३. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, विद्यासमुद्देश १।१, पृ० १०, ११।

४. विशेषके लिए देखिए, डा० सतीशचन्द्र विद्याभूषण, ए हिस्टरी ऑफ इण्डियन लॉजिक, पृ० ४०।

५. मनुस्मृति १२।१०६, १२।१११, ७।४३, २।११; चौखम्बा सं० सी०, वाराणसी।

६. प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं विविधागमम्।

त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता ॥—वही, १२।१०५।

७. भूतबली-पुष्पद्रन्त, षट्ख० ५।५।५१, सोलापुर संस्करण, सन् १९६५ ई०।

८. मुनि कन्हैयालाल; स्था० सू०, पृ० ३०९, ३१०; व्यावर संस्करण, वि० सं० २०१०।

९. मुनि कन्हैयालाल; भ० सू० ५।३।१९१-९२; घनपतिसिंह, कलकत्ता।

१०. मुनि कन्हैयालाल, अनु० सू० मूलसूत्राणि, पृ० ५३९, व्यावर संस्करण, वि० सं० २०१०।

अनुमानके भेद-प्रभेदोंकी चर्चा समाहित है। अतः जैनागमोंमें भी अनुमानका पूर्वरूप और अनुमान प्रतिपादित हैं।

इस प्रकार भारतीय वाङ्मयके अनुशीलनसे अवगत होता है कि भारतीय तर्कशास्त्र आरम्भमें 'वाकोवाक्यम्', उसके पश्चात् आन्वीक्षिकी, हेतुशास्त्र, तर्कविद्या और न्यायशास्त्र या प्रमाणशास्त्रके रूपोंमें व्यवहृत हुआ। उत्तरकालमें प्रमाणमीमांसाका विकास होनेपर हेतुविद्यापर अधिक बल दिया गया। फलतः आन्वीक्षिकीमें अर्थसंकोच होकर वह हेतुपूर्वक होनेवाले अनुमानकी बोधक हो गयी। अतः 'वाकोवाक्यम्' आन्वीक्षिकीका और आन्वीक्षिकी अनुमानका प्राचीन मूल रूप ज्ञात होता है।

अनुमानका विकास

अनुमानका विकास निबद्धरूपमें अक्षपादके न्यायसूत्रसे आरम्भ होता है। न्यायसूत्रके व्याख्याकारों—वात्स्यायन, उद्योतकर, वाचस्पति, जयन्त भट्ट, उदयन, श्रीकण्ठ, गंगेश, वर्द्धमानउपाध्याय, विश्वनाथ प्रभृति ने अनुमानके स्वरूप, आधार, भेदोपभेद, व्याप्ति, पक्षधर्मता, व्याप्तिग्रहण, अवयव आदिका विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। इसके विकासमें प्रशस्तपाद, माठर, कुमारिल जैसे वैदिक दार्शनिकोंके अतिरिक्त वसुबन्धु, दिङ्नाग, धर्मकीर्ति, धर्मोत्तर, प्रज्ञाकर, शान्तरक्षित, अर्चट आदि बौद्ध नैयायिकों तथा समन्तभद्र, सिद्धसेन, पात्रस्वामी, अकलंक, विद्यानन्द, माणिक्यनन्द, प्रभाचन्द्र, देवसूरि, हेमचन्द्र प्रमुख जैन तार्किकोंने भी योगदान किया है। निःसन्देह अनुमानका क्रमिक विकास तर्कशास्त्रकी दृष्टिसे जितना महत्त्वपूर्ण एवं रोचक है उससे कहीं अधिक भारतीय धर्म और दर्शनके इतिहासकी दृष्टिसे भी। यतः भारतीय अनुमान केवल कार्यकारणरूप बौद्धिक व्यायाम ही नहीं है, बल्कि निःश्रेयस-उपलब्धि के साधनोंमें वह परिगणित है^१। यही कारण है कि भारतीय अनुमानका जितना विचार तर्कग्रन्थोंमें उपलब्ध होता है उतना या उससे कुछ कम धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र और पुराणग्रन्थोंमें भी वह पाया जाता है।

प्रस्तुतमें हमारा उद्देश्य स्वतन्त्र रूपसे भारतीय तर्कग्रन्थोंमें अनुमानपर जो चिन्तन उपलब्ध होता है उसीके विकासपर यहाँ समीक्षात्मक विचार करना है।

(क) न्याय-दर्शनमें अनुमान-विकास

अक्षपादने अनुमानकी परिभाषा केवल 'तत्पूर्वकम्'^२ पद द्वारा ही उपस्थित की है। इस परिभाषा में 'तत्' शब्द केवल स्पष्ट है, जो पूर्वलक्षित प्रत्यक्षके लिए प्रयुक्त हुआ है और वह बतलाता है कि प्रत्यक्ष पूर्वक अनुमान होता है, किन्तु वह अनुमान है क्या? यह जिज्ञासा अतृप्त हो रह जाती है। सूत्रके अग्रांशमें अनुमानके पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट ये तीन भेद उपलब्ध होते हैं। इनमें प्रथम दो भेदोंमें आगत 'वत्' शब्द भी विचारणीय है। शब्दार्थकी दृष्टिसे 'पूर्वके समान' और 'शेषके समान' यही अर्थ उससे उपलब्ध होता है तथा 'सामान्यतोदृष्ट' से 'सामान्यतः दर्शन' अर्थ ज्ञात होता है। इसके अतिरिक्त उनके स्वरूपका कोई प्रदर्शन नहीं होता।^३

सोलह पदार्थोंमें एक अवयव पदार्थ परिगणित है। उसके प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निग

१. प्रदीपः सर्वविद्यानां.....इह त्वध्यात्मविद्यायामात्मादितत्त्वज्ञानं।

—वात्स्यायन, न्यायभा० १।१।१, पृष्ठ ११।

२. गौतम अक्षपाद, न्यायसू० १।१।५, १

३. न्यायसू० १।१।५।

मन इन पाँच भेदोंका परिभाषासहित निर्देश किया है।^१ अनुमान इन पाँचसे सम्पन्न एवं सम्पूर्ण होता है। उनके बिना अनुमानका आत्मलाभ नहीं होता। अतः अनुमानके लिए उनकी आवश्यकता असन्दिग्ध है। 'हेतु' शब्दका प्रयोग अनुमानके लक्षणमें, जो मात्र कारणसामग्रीको ही प्रदर्शित करता है, हमें नहीं मिलता, किन्तु उक्त पंचावयवोंके मध्य द्वितीय अवयवके रूपमें 'हेतु' का और हेत्वाभासके विवेचन-सन्दर्भमें 'हेत्वाभासोंका' स्वरूप अवश्य प्राप्त होता है।^२

अनुमान-परीक्षाके प्रकरणमें रोध, उपघात और सादृश्यसे अनुमानके मिथ्या होनेकी आशंका व्यक्त की है।^३ इस परीक्षासे विदित है कि गौतमके समयमें अनुमानकी परम्परा पर्याप्त विकसित रूपमें विद्यमान थी—'वर्तमानाभावे सर्वाग्रहणम्, प्रत्यक्षानुपपत्तेः'^४ सूत्रमें 'अनुपपत्ति' शब्दका प्रयोग हेतुके रूपमें किया है। वास्तवमें 'अनुपपत्ति' हेतु पंचम्यन्तकी अपेक्षा अधिक गमक है। इसीसे अनुमानके स्वरूपको भी निर्धारित किया जा सकता है। एक बात और स्मरणीय है कि 'व्याहृतत्वात् अहेतुः'^५ सूत्रमें 'अहेतु' शब्दका प्रयोग सामान्यार्थक मान लिया जाए तो गौतमकी अनुमान-सारणिमें हेतु, अहेतु और हेत्वाभास शब्द भी उपलब्ध हो जाते हैं। अतएव निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि गौतम अनुमानके मूलभूत प्रतिज्ञा, साध्य और हेतु इन तीनों ही अंगोंके स्वरूप और उनके प्रयोगसे सुपरिचित थे। वास्तवमें अनुमानकी प्रमुख आधार-शिला गम्य-गमक (साध्य-साधन) भाव योजना ही है। इस योजनाका प्रयोगात्मक रूप साधर्म्य और वैधर्म्य दृष्टान्तोंमें पाया जाता है।^६ पंचावयवावयवकी साधर्म्य और वैधर्म्यरूप प्रणालीके मूललेखक गौतम अक्षपाद जान पड़ते हैं। इनके पूर्व कणादके वैशेषिकसूत्रमें अनुमानप्रमाणका निर्देश 'लैंगिक' शब्दद्वारा किया गया है,^७ पर उसका विवेचन न्यायसूत्रमें ही प्रथमतः दृष्टिगोचर होता है। अतः अनुमानका निबद्धरूपमें ऐतिहासिक विकासक्रम गौतमसे आरम्भकर रुद्रनारायण पर्यन्त अंकित किया जा सकता है। रुद्रनारायणने अपनी तत्त्वरीट्टीमें गंगेश उपाध्याय द्वारा स्थापित अनुमानकी नव्यन्यायपरम्परामें प्रयुक्त नवीन पदावलीका विशेष विश्लेषण किया है। यद्यपि मूलभूत सिद्धान्त तत्त्वचिन्तामणिके ही हैं, पर भाषाका रूप अधुनातन है और अवच्छेदकावच्छिन्न, प्रतियोगिताका भाव आदिको नवीन लक्षणवलीमें स्पष्ट किया है।

गौतमका न्यायसूत्र अनुमानका स्वरूप, उसकी परीक्षा, हेत्वाभास, अवयव एवं उसके भेदोंको ज्ञात करनेके लिए महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यद्यपि यह सत्य है कि अनुमानके निर्धारक तथ्य पक्षधर्मता, व्याप्ति और परामर्शका उल्लेख इसमें नहीं पाया जाता, तो भी अनुमानकी प्रस्तुत की गयी समीक्षासे अनुमानका पूरा रूप खड़ा हो जाता है। गौतमके समयमें अनुमान-सम्बन्धी जिन विशेष बातोंमें विवाद था उनका उन्होंने स्वरूप-विवेचन अवश्य किया है।^८ यथा—प्रतिज्ञाके स्वरूप-निर्धारणके सम्बन्धमें विवाद था—कोई साध्यको प्रतिज्ञा मानता था, तो कोई केवल धर्मीको प्रतिज्ञा कहता था। उन्होंने साध्यके निर्देशको प्रतिज्ञा कहकर उस

१. न्यायसू०, १।१।३२-३९।

२. वही, १।२।५-९।

३. वही, २।१।३८।

४. वही, २।१।४३।

५. वही, २।१।२९।

६. साध्यसाधर्म्यात्तद्धर्मभावी दृष्टान्त उदाहरणम्। तद्विपर्ययाद्वा विपरीतम्।—वही १।१।३६, ३७।

७. तयोनिष्पत्तिः प्रत्यक्षलैंगिकाभ्याम्। अत्येदं कार्यं कारणं संयोगि विरोधि समवायि चेति लैंगिकम्।—वैशेषिक सू० १०।१।३, ९।२।१।

८. साध्यनिर्देशः प्रतिज्ञा।—न्यायसू० १।१।३३।

विवादका निरसन किया।^१ इसी प्रकार अवयवों, हेतुओं, हेत्वाभासों एवं अनुमान-प्रकारोंके सम्बन्धमें वर्तमान विप्रतिपत्तियोंका भी उन्होंने समाधान प्रस्तुत किया और एक सुदृढ़ परम्परा स्थापित की।

न्यायसूत्रके भाष्यकार वात्स्यायनने सूत्रोंमें निर्दिष्ट अनुमानसम्बन्धी सभी उपादानोंकी परिभाषाएँ अंकित कीं और अनुमानको पुष्ट और सम्बद्ध रूप प्रदान किया है। यथार्थमें वात्स्यायनने गौतमको अमर बना दिया है। व्याकरणके क्षेत्रमें जो स्थान भाष्यकार पतंजलिका है, न्यायके क्षेत्रमें वही स्थान वात्स्यायनका है। वात्स्यायनने सर्वप्रथम 'तत्पूर्वकम्' पदका विस्तार कर 'लिंगलिङ्गिनोः सम्बन्धदर्शनपूर्वकमनुमानम्'^२ परिभाषा अंकित की। और लिंग-लिङ्गीके सम्बन्धदर्शनको अनुमानका कारण बतलाया।

गौतमने अनुमानके त्रिविध भेदोंका मात्र उल्लेख किया था। पर वात्स्यायनने उनकी सोदाहरण परिभाषाएँ भी निबद्ध की हैं।^३ वे एक प्रकारका परिष्कार देकर ही सन्तुष्ट नहीं हुए, अपितु प्रकारान्तरसे दूसरे परिष्कार भी ग्रथित किये हैं।^४ इन व्याख्यामूलक परिष्कारोंके अध्ययन बिना गौतमके अनुमानरूपोंको अवगत करना असम्भव है। अतः अनुमानके स्वरूप और उसकी भेदव्यवस्थाके स्पष्टीकरणका श्रेय बहुत कुछ वात्स्यायनको है।

अपने समयमें प्रचलित दशावयवकी समीक्षा करके न्यायसूत्रकार द्वारा स्थापित पंचावयव-मान्यताका युक्तिपुरस्सर समर्थन करना भी उनका उल्लेखनीय वैशिष्ट्य है।^५ न्यायभाष्यमें^६ साधर्म्य और वैधर्म्य प्रयुक्त हेतुरूपोंकी व्याख्या भी कम महत्त्वकी नहीं है। द्विविध उदाहरणका विवेचन भी बहुत सुन्दर और विशद है। ध्यातव्य है कि वात्स्यायनने 'पूर्वस्मिन् दृष्टान्ते यौ तौ धर्मौ साध्यसाधनभूतौ पश्यति, साध्येऽपि तयोः साध्यसाधनभावमनुमिनोति।'^७ कहकर साधर्म्यदृष्टान्तको अन्वयदृष्टान्त कहने और अन्वय एवं अन्वयव्याप्ति दिखानेका संकेत किया जान पड़ता है। इसी प्रकार 'उत्तरस्मिन् दृष्टान्ते तयोर्धर्मयोरेकस्याभावादितरस्याभावं पश्यति, तयोरेकस्याभावादितरस्याभावं साध्येऽनुमिनोतीति।'^८ शब्दों द्वारा उन्होंने वैधर्म्य-दृष्टान्तको व्यतिरेकदृष्टान्त प्रतिपादन करने तथा व्यतिरेक एवं व्यतिरेकव्याप्ति प्रदर्शित करनेकी ओर भी इंगित किया है। यदि यह ठीक हो तो यह वात्स्यायनकी एक नयी उपलब्धि है। सूत्रकारने हेतुका सामान्य-लक्षण ही बतलाया है।^९ पर वह इतना अपर्याप्त है कि उससे हेतुके सम्बन्धमें स्पष्टतः जानकारी नहीं हो पाती। भाष्यकारने हेतु-लक्षणको उदाहरण द्वारा^{१०} स्पष्ट करनेका सफल प्रयास किया है। उनका अभिमत है कि 'साध्यसाधनं हेतुः' तभी स्पष्ट हो सकता है जब साध्य (पक्ष) तथा उदाहरणमें धर्म (पक्षधर्म हेतु) का प्रतिसन्धान कर उसमें साधनता बतलायी जाए। हेतु समान और असमान दोनों ही प्रकारके उदाहरण बतलाने पर साध्यका साधक होता है। यथा—न्यायसूत्रकारके प्रतिज्ञालक्षण^{११} को स्पष्ट करनेके लिए उदाहरणस्वरूप कहे गये 'शब्दोऽनित्यः' को 'उत्पत्तिधर्मकत्वात्'^{१२} हेतुका प्रयोग करके सिद्ध किया गया है। तात्पर्य यह कि भाष्यकारने हेतुस्वरूपबोधक सूत्रकी उदाहरणद्वारा विशद व्याख्या तो की ही है, पर 'साध्ये

१. न्यायभा०, १।१।५, पृष्ठ २१।

२, ३, ४. वही, १।१।५, पृष्ठ २१, २२।

५. न्यायभा० १।१।३२, पृष्ठ ४७।

६. वही, १।१।३४, ३५, पृष्ठ ४८।

७. वही, १।१।३७, पृष्ठ ५०।

८. वही, १।१।३७, पृष्ठ ५०।

९. न्यायसू० १।१।३४, ३५।

१०. 'उत्पत्तिधर्मकत्वात्' इति। उत्पत्तिधर्मकमनित्यं दृष्टमिति।

—न्यायभा० १।१।३४, ३५, पृष्ठ ४८, ४९।

११. साध्यनिर्देशः प्रतिज्ञा—न्यासू० १।१।३३।

१२. न्यायभा० १।१।३३, ३५, पृष्ठ ४८, ४९।

प्रतिसन्धाय धर्मसुदाहरणे च प्रतिसन्धाय तस्य साधनतावचनं हेतुः^१ कथन द्वारा साध्यके साथ नियत सम्बन्धी-को हेतु कहा है। अतः जिस प्रकार उदाहरणके क्षेत्रमें उनकी देन है उसी प्रकार हेतुके क्षेत्रमें भी।

अनुमानकी प्रामाणिकता या सत्यता लिंग-लिंगीके सम्बन्धपर आश्रित है। वह सम्बन्ध नियत साहचर्यरूप है। सूत्रकार गौतम उसके विषयमें मौन है। पर भाष्यकारने^२ उसका स्पष्ट निर्देश किया है। उन्होंने लिंगदर्शन और लिंगस्मृतिके अतिरिक्त लिंग (हेतु) और लिंगी (हेतुमान-साध्य) के सम्बन्ध दर्शनकी भी अनुमितिमें आवश्यक बतला कर उस सम्बन्धके मर्मका उद्घाटन किया है। उसका मत है कि सम्बद्ध हेतु तथा हेतुमानके मिलनेसे हेतुस्मृतिका अभिसम्बन्ध होता है और स्मृति एवं लिंगदर्शनसे अप्रत्यक्ष (अनुमेय) अर्थात् अनुमान होता है। भाष्यकारके इस प्रतिपादनसे प्रतीत होता है कि उन्होंने 'सम्बन्ध' शब्दसे व्याप्ति-सम्बन्धका और 'लिंगलिंगिनोः सम्बद्धयोर्दर्शनम्' पदोंसे उस व्याप्ति-सम्बन्धके ग्राहक भूयोदर्शन या सहचारदर्शनका संकेत किया है जिसका उत्तरवर्ती आचार्योंने स्पष्ट कथन किया तथा उसे महत्त्व दिया है।^३ वस्तुतः लिंगलिंगीको सम्बद्ध देखनेका नाम ही सहचारदर्शन या भूयोदर्शन है, जिसे व्याप्तिग्रहणमें प्रयोजक माना गया है। अतः वात्स्यायनके मतसे अनुमानकी कारण-सामग्री केवल प्रत्यक्ष (लिंगदर्शन) ही नहीं है, किन्तु लिंगदर्शन, लिंग-लिंगीसम्बन्धदर्शन और तत्सम्बन्धस्मृति ये तीनों हैं। तथा सम्बन्ध (व्याप्ति) का ज्ञान उन्होंने प्रत्यक्ष द्वारा प्रतिपादन किया है, जिसका अनुसरण उत्तरवर्ती तार्किकोंने भी किया है।^४

वात्स्यायनकी^५ एक महत्वपूर्ण उपलब्धि और उल्लेख्य है। उन्होंने अनुमानपरीक्षा प्रकरणमें त्रिविध अनुमानोंके मिथ्यात्वकी आशंका प्रस्तुत कर उनकी सत्यताकी सिद्धिके लिए कई प्रकारसे विचार किया है। आपत्तिकार कहता है कि 'ऊपरके प्रदेशमें वर्षा हुई है, क्योंकि नदीमें बाढ़ आयी है;^६ वर्षा होगी, क्योंकि चींटियाँ अण्डे लेकर जा रही हैं^७ ये दोनों अनुमान सदोष हैं, क्योंकि कहीं नदीकी धारामें रुकावट होनेपर भी नदीमें बाढ़ आ सकती है। इसी प्रकार चींटियोंका अण्डों सहित संचार चींटियोंके बिलके नष्ट होनेपर भी हो सकता है। इसी तरह सामान्यतोद्ष्ट अनुमानका उदाहरण—'मोर बोल रहे हैं, अतः वर्षा होगी'—भी मिथ्यानुमान है, क्योंकि पुरुष भी परिहास या आजीविकाके लिए मोरकी बोली बोल सकता है।^८ इतना ही नहीं मोरके बोलनेपर भी वर्षा नहीं हो सकती; क्योंकि वर्षा और मोरके बोलनेमें कोई कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं है। वात्स्यायन^९ इन समस्त आपत्तियों (व्यभिचार-शंकाओं) का निराकरण करते हुए कहते हैं कि उक्त आपत्तियाँ ठीक नहीं हैं, क्योंकि उक्त अनुमान नहीं है, अनुमानाभास है और अनुमानाभासोंको अनुमान समझ लिया गया है। तथ्य यह है कि विशिष्ट हेतु ही विशिष्ट साध्यका अनुमापक होता

१. न्यायभा०, १।१।३४, ३५, पृष्ठ ४८, ४९।

२. लिंगलिंगिनोः सम्बन्धदर्शनं लिंगदर्शनं चाभिसम्बद्धयते। लिंगलिंगिनोः सम्बद्धयोर्दर्शनेन लिंग-स्मृतिरभिसम्बद्धयते। स्मृत्या लिंगदर्शनेन चाप्रत्यक्षोऽर्थोऽनुमीयते।—न्यायभा० १।१।५, पृ० २१।

३. यथास्वं भूयोदर्शनसहायानि स्वाभाविकसम्बन्धग्रहणे प्रमाणान्युन्नेतव्यानि—वाचस्पति, न्याय० ता० टी० १।१।५, पृ० १६७।

४. उद्योतकर, न्यायवा० १।१।५, पृ० ४४। न्यायवा० ता० टी० १।१।५, पृ० १६७। उदयन, न्यायवा० ता० टी० परिशु० १।१।५, पृ० ७०१। गंगेश, तत्त्वचिन्तामणि जागदी० पृ० ३७८, आदि।

५. ६. ७. न्यायभा० २।१।३८, पृ० ११४।

८. न्यायभा० २।१।३८, पृष्ठ ११४।

९. वही, २।१।३९, पृष्ठ ११४, ११५।

है^१। अतः अनुमानकी सत्यताका आधार विशिष्ट (साध्याविनाभावी) हेतु ही है, जो कोई नहीं। यहाँ वात्स्यायनके प्रतिपादन और उनके 'विशिष्ट हेतु' पदसे अव्यभिचारी हेतु अभिप्रेत है जो नियमसे साध्यका गमक होता है। वे कहते हैं^२ कि यह अनुमाताका ही अपराध माना जाएगा कि वह अर्थविशेषवाले अनुमेय अर्थको सामान्य अर्थसे जाननेकी इच्छा करता है, अनुमानका नहीं।

इस प्रकार वात्स्यायनने अनुमानके उपादानोंके परिष्कार एवं व्याख्यामूलक विशदीकरणके साथ कितना ही नया चिन्तन प्रस्तुत किया है।

अनुमानके क्षेत्रमें वात्स्यायनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य उद्योतकरका^३ है। उन्होंने लिंगपरामर्शको^४ अनुमान कहा है। अब तक अनुमानकी परिभाषा कारणसामग्रीपर निर्भर थी। किन्तु उन्होंने उसका स्वतन्त्र स्वरूप देकर नयी परम्परा स्थिर की। व्याप्तिविशिष्ट पक्षधर्मताका ज्ञान ही परामर्श है। उद्योतकरकी^५ दृष्टिमें लिंगलिंगिसम्बन्धस्मृतिसे युक्त लिंगपरामर्श अभीष्टार्थ (अनुमेयार्थ) का अनुमापक है। वे कहते हैं^६ कि अनुमान वस्तुतः उसे कहना चाहिए, जिसके अनन्तर उत्तरकालमें शेषार्थ (अनुमेयार्थ) प्रतिपत्ति (अनुमिति) हो और ऐसा केवल लिंगपरामर्श ही है, क्योंकि उसके अनन्तर नियमतः अनुमिति उत्पन्न होती है। लिंग-लिंगिसम्बन्धस्मृति आदि लिंगपरामर्शसे व्यवहित हो जानेसे अनुमान नहीं है। उद्योतकरकी यह अनुमान-परिभाषा इतनी दृढ़ एवं बद्धमूल हुई कि उत्तरवर्ती प्रायः सभी व्याख्याकारोंने^७ अपने व्याख्या-ग्रन्थोंमें उसे अपनाया है। नव्यनैयायिकोंने^८ तो उसमें प्रभूत परिष्कार भी उपस्थित किये हैं, जिससे तर्कशास्त्रके क्षेत्रमें अनुमानने व्यापकता प्राप्त की है। और नया मोड़ लिया है।

न्यायवार्तिककारने^९ गौतमोक्त पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट इन तीनों अनुमान-भेदोंकी व्याख्या करनेके अतिरिक्त अन्वयी, व्यतिरेकी और अन्वयव्यतिरेकी इन तीन नये अनुमान-भेदोंकी भी सृष्टि की है, जो उनसे पूर्व न्यायपरम्परामें नहीं थे। 'त्रिविधम्' सूत्रके इन्होंने कई व्याख्यान प्रस्तुत किये हैं।^{१०} निश्चयतः उनका यह सब निरूपण उनकी मौलिक देन है। परवर्ती नैयायिकोंने उनके द्वारा रचित व्याख्याओंका ही स्पष्टीकरण किया है।

उद्योतकर द्वारा बौद्धसन्दर्भमें की गयी हेतुलक्षणसमीक्षा भी महत्त्व की है। बौद्ध^{११} हेतुका लक्षण त्रिरूप

१. वही० २।१।३९, पृष्ठ ११५।

२. न्यायवा० १।१।५, पृष्ठ ४५ आदि।

४. वही १।१।५, पृष्ठ ४५।

५. तस्मात् स्मृत्यनुगृहीतो लिंगपरामर्शोऽभीष्टार्थप्रतिपादकः—वही, १।१।५, पृ० ४५।

६. यस्माल्लिंगपरामर्शदिनन्तरं शेषार्थप्रतिपत्तिरिति। तस्माल्लिंगपरामर्शो न्याय्य इति।

स्मृतिर्न प्रधानम्। किं कारणम्? स्मृत्यनन्तरमप्रतिपत्तेः—वही, १।१।५, पृ० ५।

७. वाचस्पति, न्यायवा० ता० टी० १।१।५, पृ० १६९। तथा उदयन, ता० टी० परिशु० १।१।५, पृ० ७०७।

८. गंगेश उपाध्याय, तत्त्वचिन्तामणि, जागदीश, पृ० १३, ७१। विश्वनाथ, सिद्धान्तमु० पृष्ठ ५० आदि।

९. न्यायवा० १।१।५, पृ० ४६।

१०. वही, १।१।५, पृ० ४६-४९।

११. दिग्नागशिष्य शङ्कर, न्यायप्रवेश, पृ० १।

मानते हैं। पर उद्योतकर न केवल उसकी ही आलोचना करते हैं, अपितु द्विलक्षणकी भी मीमांसा करते हैं।^१ किन्तु सूत्रकारोक्त एवं भाष्यकार समर्थित द्विलक्षण, त्रिलक्षणके साथ चतुर्लक्षण और पंचलक्षण हेतु उन्हें इष्ट^२ है। अन्वयव्यतिरेकीमें पंचलक्षण और केवलान्वयी तथा केवलव्यतिरेकीमें चतुर्लक्षण घटित होता है। यहाँ उद्योतकरकी विशेषता यह है कि वे न्यायभाष्यकारकी आलोचना करनेसे भी नहीं चूकते। वात्स्यायनने^३ 'तथा वैधर्म्यात्'^४ इस वैधर्म्य प्रयुक्त हेतुलक्षणका उदाहरण साधर्म्य प्रयुक्त हेतुलक्षणके उदाहरण 'उत्पत्तिधर्मकत्वात्' को ही प्रस्तुत किया है। इसे वे^५ युक्तिसंगत न मानते हुए कहते हैं कि यह तो मात्र प्रयोगभेद है। और प्रयोगभेदसे वस्तु (हेतु) भेद नहीं हो सकता। अथवा वह केवल उदाहरणभेद है—आत्मा और घट। यदि उदाहरण-भेदसे भेद हो तो 'तथा वैधर्म्यात्' यह सूत्र नहीं होना चाहिए, क्योंकि उदाहरणके भेदसे ही हेतुभेद अवगत हो जाता है और भेदक उदाहरणसूत्र 'तद्विपर्ययाद्वा विपरीतम्' सूत्रकारने कहा ही है। अतः 'उत्पत्तिधर्मकत्वात्' यह वैधर्म्यप्रयुक्त हेतुका उदाहरण ठीक नहीं है। किन्तु 'नेदं निरात्मकं जीवच्छरीरं अप्रमाणादिमत्त्वप्रसंगादिति' यह उदाहरण उचित है। इस प्रकार न्यायभाष्यकारकी मीमांसा सूत्रकारद्वारा प्रतिपादित हेतुद्वयकी पुष्टिमें ही की गयी है। अतएव उद्योतकर अन्तिम निष्कर्ष निकालते हुए लिखते हैं^६ कि परोक्त हेतुलक्षण सम्भव नहीं है, यही आर्ष (सूत्रकारोक्त) हेतुलक्षण संगत है।

न्यायभाष्यकारके^७ समय तक अनुमानावयवोंकी मान्यता दो रूपोंमें उपलब्ध होती है—(१) पंचावयव और (२) दशावयव। वात्स्यायनने दशावयवमान्यताकी मीमांसा करके सूत्रकार प्रतिपादित पंचावयवमान्यताकी संपुष्टि की है। पर उद्योतकरने^८ व्यवयवमान्यताकी भी समीक्षा की है। यह मान्यता बौद्ध तार्किक दिङ्नागकी है, क्योंकि दिङ्नागने^९ ही अधिक-से-अधिक तीन अवयव स्वीकार किये हैं। सांख्य विद्वान् माठरने^{१०} भी अनुमानके तीन अवयव प्रतिपादित किये हैं। यदि माठर दिङ्नागसे पूर्ववर्ती हैं तो व्यवयवमान्यता उनकी समझना चाहिए। इस प्रकार कितनी ही स्थापनाओं और समीक्षाओंके रूपमें उद्योतकरकी उपलब्धियाँ हम उनके न्यायवार्तिकमें पाते हैं।

वाचस्पतिकी^{११} भी अनुमानके लिए महत्त्वपूर्ण देन है। व्याप्तिग्रहकी सामग्रीमें तर्कका प्रवेश उनकी ऐसी देन है जिसका अनुसरण उत्तरवर्ती सभी नैयायिकोंने किया है। उद्योतकर द्वारा प्रतिपादित 'लिङ्ग-

१. 'त्रिलक्षणं च हेतुं बुवाणेन—अहेतुत्वमिति प्राप्तम् ।....तादृगविनाभावविधर्मोपदर्शनं हेतुरित्यपरे....तादृशा बिना न भवतीत्यनेन द्वयं लभ्यते—।'—न्यायवा० १।१।३५, पृ० १३१।

२. चशब्दात् प्रत्यक्षागमाविरुद्धं चेत्येवं चतुर्लक्षणं पंचलक्षणमनुमानमिति ।—वही, १।१।५, पृ० ४६।

३. न्यायभा० १।१।५, पृ० ४९।

४. न्यायसू० १।१।३५।

५. एतत्तु न समंजसमिति पद्यामः प्रयोगमात्रभेदात्....। उदाहरणमात्रभेदाच्च....। तस्मान्नेदं उदाहरणं न्याय्यमिति । उदाहरणं तु 'नेदं निरात्मकं जीवच्छरीरं अप्रमाणादिमत्त्वप्रसंगादिति'....।—न्यायवा० १।१।३५, पृ० १२३।

६. न्यायवा०, १।१।३५, पृ० १३४।

७. न्यायभा० १।१।३२, पृ० ४७।

८. न्यायवा० १।१।३२, पृ० १०८।

९. न्यायप्रवेश पृ० १, २।

१०. पक्षहेतुदृष्टान्ता इति व्यवयवम्—माठर वृ०, का० ५।

११. न्यायवा० ता० टी० १।१।५, पृ० १६७, १७०, १७८, १६५ तथा १।१।३२, पृ० २६७।

परामर्शरूप' अनुमान-परिभाषाका समर्थन करके उसे पुष्ट किया है। दो अवयवकी मान्यता भी उल्लेख करके उसकी समीक्षा प्रस्तुत की है। यह दो अवयवकी मान्यता धर्मकीर्तिकी^१ है। न्यायदर्शनमें अविनाभावका सर्व-प्रथम स्वीकार या पक्षधर्मत्वादि पाँच रूपोंके अविनाभाव द्वारा संग्रहका विचार उन्हींके द्वारा प्रविष्ट हुआ है। लिङ्ग-लिङ्गीके सम्बन्धको स्वाभाविक प्रतिपादन करना और उसे निरुपाधि अंगीकार करना उन्हींकी सूझ है।

जयन्तभट्टका भी अनुमानके लिए कम महत्त्वपूर्ण योगदान नहीं है। उन्होंने न्यायमंजरी और न्यायकालिकामें अनुमानका सांगोपांग निरूपण किया है। वे स्वतन्त्र चिन्तक भी रहे हैं। यहाँ हम उनके स्वतन्त्र विचारका एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। न्यायमञ्जरीमें^२ हेत्वाभासोंके प्रकरणमें उन्होंने अन्यथा-सिद्धत्व नामके एक छोटे हेत्वाभासकी चर्चा की है। सूत्रकारके उल्लंघनकी बात उठनेपर वे कहते हैं कि सूत्रकारका उल्लंघन होता है तो होने दो, सुस्पष्ट दृष्ट अप्रयोजक हेत्वाभासका अपह्नव नहीं किया जा सकता। पर अन्तमें वे उसे उद्योतकरकी तरह असिद्धवर्गमें अन्तर्भूत कर लेते हैं। 'अथवा' के साथ यह भी कहा है कि अप्रयोजकत्व (अन्यथासिद्धत्व) सभी हेत्वाभासवृत्ति अनुगत सामान्यरूप है। न्यायकालिकामें^३ भी यही मत स्थिर किया है। समव्याप्ति और विषमव्याप्तिका निर्देश भी उल्लेखनीय है। अवयव-समीक्षा, हेतुसमीक्षा आदि अनुमान-सम्बन्धी विचार भी महत्त्वपूर्ण हैं।

उदयनका^४ चिन्तन सामान्यतया पूर्वपरम्पराका समर्थक है, किन्तु अनेक स्थलोंपर उनकी स्वस्थ और सूक्ष्मविचारधारा उनकी मौलिकताका स्पष्ट प्रकाशन करती है। उपाधि और व्याप्तिकी जो परिभाषाएँ उन्होंने प्रस्तुत कीं उत्तरकालमें उन्हींको केन्द्र बनाकर पुष्कल विचार हुआ है।

अनुमानके विकासमें अभिनव क्रान्ति उदयनसे आरम्भ होती है। सूत्र और व्याख्यापद्धतिके स्थानमें प्रकरण-पद्धतिका जन्म होता है और स्वतन्त्र प्रकरणों द्वारा अनुमानके स्वरूप, आधार, अवयव, परामर्श, व्याप्ति, उपाधि, हेतु एवं पक्ष-सम्बन्धी दोषोंका इस कालमें सूक्ष्म विचार किया गया है।

गंगेशने तत्त्वचिन्तामणिमें अनुमानकी परिभाषा तो वही दी है जो उद्योतकरने न्यायवार्तिकमें उपस्थित की है, पर उनका वैशिष्ट्य यह है कि उन्होंने अनुमितिकी ऐसी परिभाषा^५ प्रस्तुत की है जो न्याय-परम्परामें अब तक प्रचलित नहीं थी। उसमें प्रयुक्त व्याप्ति^६ और पक्षधर्मता^७ पदोंका उन्होंने सर्वथा अभिनव

१. 'अथवा तस्यैव साधनस्य यन्नांगं प्रतिज्ञोपनयनिगमनादि.....'

—वादन्याय० पृ० ६१। किन्तु धर्मकीर्ति, न्यायबिन्दु (पृ० ९१) में दृष्टान्तको हेतुसे पृथक् नहीं मानते और हेतुको ही साधनावयव बतलाते हैं। प्रमाणवार्तिक (१-१२८) में भी 'हेतुरेव हि केवलः' कहते हैं।

२. न्यायमंजरी पृष्ठ १३१, १६३-१६६।

३. अप्रयोजकत्वं च सर्वहेत्वाभासानामनुगतं रूपम्।—न्यायक० पृष्ठ १५।

४. किरणावली० पृष्ठ २६७।

५. तत्र व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानजन्यं ज्ञानमनुमितिः, तत्करणमनुमानम्।—त० चि०, अनुमानलक्षण, पृष्ठ १३।

६. नन्वनुमितिहेतुव्याप्तिज्ञाने का व्याप्तिः। न तावदव्यभिचरितत्वम्। '.....नापि.....' अत्रोच्यते। प्रतियोग्य-सामानाधिकरणयत्सामानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नं यन्न भवति तेन समं तस्य सामानाधिकरण्यं व्याप्तिः।

—त० चि०, अनुमानलक्षण, पृष्ठ ७७, ८६, १७१, १७८, १८१, १८६-२०९।

७. वही, पृष्ठ ६३१।

तथा विस्तृत स्वरूप प्रदर्शित किया है। व्याप्तिग्रहके साधनोंमें सामान्यलक्षणाप्रत्यासात्तिपर^१ उन्होंने सर्वाधिक बल दिया है। उनका अभिमत है कि यदि सामान्यलक्षणा न हो तो अनुकूल तर्कादिके बिना धूमादिमें आशंकित व्यभिचार नहीं बन सकेगा, क्योंकि प्रसिद्ध धूममें वह्निसम्बन्धका ज्ञान हो जानेसे कालान्तरीय एवं देशान्तरीय धूमके सद्भावका साधक प्रमाण न होनेसे उसका ज्ञान नहीं होता। सामान्यलक्षणा द्वारा तो समस्त धूमोंकी उपस्थिति हो जाने और धूमान्तरका विशेष दर्शन न होनेसे व्यभिचारकी आशंका सम्भव है। तात्पर्य यह कि व्यभिचारशंकाके लिए सामान्यलक्षणाका मानना आवश्यक है और व्यभिचारशंकाके होने पर ही तर्कादिकी उपयोगिता प्रमाणित होती है। इसी प्रकार गंगेशने अनुमानके सम्बन्धमें मौलिक विवेचन नव्यन्यायके आलोकमें कर नये सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं।

विश्वनाथ, जगदीश तर्कालंकार, मथुरानाथ तर्कवागीश, मदाधर आदि नव्यनैयायिकोंने भी अनुमान पर बहुत ही सूक्ष्म विचार करके उसे समृद्ध किया है। केशव मिश्रकी तर्कभाषा और अन्नम्भट्टकी तर्कसंग्रह प्राचीन और नवीन न्यायकी प्रतिनिधि तर्ककृतियाँ हैं, जिनमें अनुमानका सुबोध और सरल भाषामें विवेचन उपलब्ध है।

(ख) वैशेषिक-दर्शनमें अनुमानका विकास

वैशेषिकदर्शनसूत्रप्रणेता कणादने^२ स्वतन्त्र दर्शनका प्रणयन करके उसमें पदार्थकी सिद्धि (व्यवस्था) प्रत्यक्षके अतिरिक्त लैंगिक द्वारा भी प्रतिपादित की है और हेतु, अपदेश, लिंग, प्रमाण जैसे हेतुवाची पर्याय-शब्दोंका प्रयोग तथा कार्य, कारण, संयोगि, विरोधि एवं समवायि इन पांच लैंगिकप्रकारों और त्रिविध हेत्वाभासोंका निर्देश किया है। उनके इस संक्षिप्त अनुमान-निरूपणमें अनुमानका सूत्रपात मात्र दिखता है, विकसित रूप कम मिलता है। पर उनके भाष्यकार प्रशस्तपादके भाष्यमें अनुमान-समीक्षा विशेष रूपमें उपलब्ध होती है। अनुमानका लक्षण प्रशस्तपादने इस प्रकार दिया है—‘लिंगदर्शनात्संजायमानं लैंगिकम्’^३ अर्थात् लिंगदर्शनसे होनेवाले ज्ञानको लैंगिक कहते हैं। इसी सन्दर्भमें उन्होंने^४ लिंगका स्वरूप बतलानेके लिए काश्यपकी दो कारिकाएँ उद्धृत की हैं जिनका आशय प्रस्तुत करते हुए लिखा है^५ कि जो अनुमेय अर्थके साथ किसी देशविशेष या कालविशेषमें सहचरित हो, अनुमेयधर्मसे समन्वित किसी दूसरे सभी अथवा एक स्थानमें प्रसिद्ध (विद्यमान) हो और अनुमेयसे विपरीत सभी स्थानोंमें प्रमाणसे असत् (व्यावृत्त) हो वह अप्रसिद्ध अर्थका अनुमापक लिंग है। किन्तु जो ऐसा नहीं वह अनुमेयके ज्ञानमें लिंग नहीं है—लिंगाभास है। इस प्रकार प्रशस्तपादने सर्वप्रथम लिंगको त्रिरूप वर्णित किया है। बौद्ध तार्किक दिङ्नागने^६ भी हेतुको त्रिरूप बतलाया है। सम्भवतः वह प्रशस्तपादका अनुसरण है।

१. व्याप्तिग्रहश्च सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्त्या सकलधूमादिविषयकः.....। यदि सामान्यलक्षणा नास्ति तदा.....।

—वही, पृष्ठ ४३३, ४५३।

२. वैशेषि० द० १०।१।३, तथा १।२।१, ४।

३. प्रश० भा०, पृष्ठ ९९।

४, ५. वही, पृ० १००, १०१।

६. हेतुस्त्रिरूपः। किं पुनस्त्रैरूप्यम्। पक्षधर्मत्वं सपक्षे सत्त्वं विपक्षे चासत्त्वमिति। —न्यायप्र० पृ० १।

व्याप्तिग्रहणके प्रकारका निरूपण भी हम प्रशस्तपादके भाष्यमें^१ सर्वप्रथम देखते हैं। उन्होंने उसे बतलाते हुए लिखा है कि 'जहाँ धूम होता है वहाँ अग्नि होती है और अग्नि न होने पर धूम भी नहीं होता, इस प्रकारसे व्याप्तिको ग्रहण करने वाले व्यक्तिको असन्दिग्ध धूमको देखने और धूम तथा वृत्तिके साहचर्य-का स्मरण होनेके अनन्तर अग्निका ज्ञान होता है। इसी तरह सभी अनुमानोंमें व्याप्तिका निश्चय अन्वय-व्यतिरेकपूर्वक होता है। अतः समस्त देश तथा कालमें साध्याविनाभूत लिङ्ग साध्यका अनुमापक होता है।' व्याप्तिग्रहणके प्रकारका इस तरहका स्पष्ट निरूपण प्रशस्तपादसे पूर्व उपलब्ध नहीं होता।

प्रशस्तपादने^२ ऐसे कतिपय हेतुओंके उदाहरण प्रस्तुत किये हैं जिनका अन्तर्भाव सूत्रकार कणादके उक्त कार्यादि पंचविध हेतुओंमें नहीं होता। यथा—चन्द्रोदयसे समुद्रवृद्धि और कुमुदविकासका, शरदमें जलप्रसादसे अगस्त्योदयका अनुमान करना। अतएव वे सूत्रकारके हेतुकथनको अवधारणार्थक न मानकर 'अस्येदम्' इस सम्बन्धमात्रके सूचक वचनसे चन्द्रोदयादि हेतुओंका, जो कार्यादिरूप नहीं हैं, संग्रह कर लेते हैं। यह प्रतिपादन भी प्रशस्तपादकी अनुमानके क्षेत्रमें एक देन है।

अनुमानके दृष्ट और सामान्यतोदृष्टके भेदसे दो भेदों^३ तथा स्वनिश्चितार्थानुमान और परार्थानुमानके भेदसे भी दो भेदोंका^४ वर्णन, शब्द, चेष्टा, उपमान, अर्थापत्ति, सम्भव, अभाव और ऐतिह्यका अनुमानमें अन्तर्भाव-प्रतिपादन,^५ परार्थानुमानवाक्यके प्रतिज्ञा, अपदेश, निदर्शन, अनुसन्धान, प्रत्याम्नाय इन पाँच अवयवोंकी परिकल्पना,^६ हेत्वाभासोंका अपने ढंगका चिन्तन,^७ अनध्यवसितनामके हेत्वाभासकी कल्पना और फिर उसे असिद्धके भेदोंमें ही अन्तर्भूत करना^८ तथा निदर्शनके विवेचनप्रसंगमें निदर्शनाभासोंका कथन,^९ जो न्यायदर्शनमें उपलब्ध नहीं होता, केवल जैन और बौद्ध तर्कग्रन्थोंमें वह मिलता है, आदि अनुमान-सम्बन्धी सामग्री प्रशस्तपादभाष्यमें पर्याप्त विद्यमान है।

व्योमशिव, श्रीधर आदि वैशेषिक तार्किकोंने भी अनुमानपर विचार किया है और उसे समृद्ध बनाया है।
(ग) बौद्ध दर्शनमें अनुमानका विकास

बौद्ध तार्किकोंने तो भारतीय तर्कशास्त्रको इतना प्रभावित किया है कि अनुमानपर उनके द्वारा संख्याबद्ध ग्रन्थ लिखे गये हैं। उपलब्ध बौद्ध तर्कग्रन्थोंमें सबसे प्राचीन तर्कशास्त्र^{१०} और उपायहृदय^{११} नामक

१. विधिस्तु यत्र धूमस्तत्राग्निरग्न्यभावे धूमोऽपि न भवतीति। एवं प्रसिद्धसमयस्यासन्निग्धधूमदर्शनात् साहचर्यानुस्मरणात् तदनन्तरमग्न्यध्यवसायो भवतीति। एवं सर्वत्र देशकालाविनाभूतमितरस्य लिङ्गम्।

—प्रश० भा० पृष्ठ १०२, १०३

२. शास्त्रे कार्यादिग्रहणं निदर्शनार्थं कृतं नावधारणार्थम्। कस्मात्? व्यतिरेकदर्शनात्। तद्यथा—व्यवहितस्य हेतुलिङ्गम्, चन्द्रोदयः समुद्रवृद्धेः कुमुदविकासस्य च'.....—वही, पृष्ठ १०४।

३. प्रश० भा० पृष्ठ १०४।

४. वही पृष्ठ १०६, ११३।

५. वही, पृष्ठ १०६-११२।

६. वही, पृष्ठ ११४-१२७।

७. वही, पृष्ठ ११६-१२१।

८. वही, पृष्ठ ११६ तथा १२०।

९. वही, पृष्ठ १२२।

१०. ओरियंटल इन्स्टीट्यूट बड़ौदा द्वारा प्रकाशित Per Dinnaga Buddhist texts on Logic Form Chinese Sources के अन्तर्गत।

११. वही।

दो ग्रन्थ माने जाते हैं। तर्कशास्त्रमें तीन प्रकरण हैं। प्रथममें परस्पर दोषापादन, खण्डनप्रक्रिया, प्रत्यक्ष-विरुद्ध, अनुमानविरुद्ध, लोकविरुद्ध तीन विरुद्धोंका कथन, हेतुफलन्याय, सापेक्षन्याय, साधनन्याय, तथतान्याय चार न्यायोंका प्रतिपादन आदि है। द्वितीयमें खण्डनभेदों और तृतीयमें उन्हीं बाईस निग्रहस्थानोंका अभिधान है, जिनका गौतमके न्यायसूत्रमें है। किन्तु गौतमकी तरह हेत्वाभास पाँच वर्णित नहीं हैं, अपितु असिद्ध, विरुद्ध और अनैकान्तिक तीन अभिहित हैं।^१ जैसी युक्तियाँ और प्रत्युक्तियाँ इसमें प्रदर्शित हैं उनसे अनुमानका उपहास ज्ञात होता है। पर^२ इतना स्पष्ट है कि शास्त्रार्थमें विजय पाने और विरोधीका मुँह बन्द करनेके लिए सद्-असद् तर्क उपस्थित करना उस समयकी प्रवृत्ति रही जान पड़ती है।

उपायहृदयमें चार प्रकरण हैं। प्रथममें वादके गुण-दोषोंका वर्णन करते हुए कहा गया है^३ कि वाद नहीं करना चाहिए, क्योंकि उससे वाद करनेवालोंको विपुल क्रोध और अहंकार उत्पन्न होता है तथा चित्त विभ्रान्त, मन कठोर, परपापप्रकाशक और स्वकीय पाण्डित्यका अनुमोदक बन जाता है। इसके उत्तरमें कहा गया है कि तिरस्कार, लाभ और ख्यातिके लिए वाद नहीं, अपितु सुलक्षण और दुर्लक्षण उपदेशकी इच्छासे वह किया जाना चाहिए। यदि लोकमें वाद न हो तो मूर्खोंका बाहुल्य हो जायगा और उससे मिथ्या-ज्ञानादिका साम्राज्य जम जाएगा। फलतः संसारकी दुर्गति तथा उत्तम कार्योंकी क्षति होगी। इस प्रकरणमें न्यायसूत्रकी तरह प्रत्यक्षादि चार प्रमाण और पूर्ववदादि तीन अनुमान वर्णित हैं। आठ प्रकारके हेत्वाभासों आदिका भी निरूपण है। द्वितीयमें वादधर्मी आदिका, तृतीयमें दूषणों आदिका और चतुर्थमें बीस प्रकारके प्रश्नोत्तर धर्मी, जिनका न्यायसूत्रमें जातियोंके रूपमें कथन है, आदिका वर्णन है।^४ उल्लेख्य है कि इसमें पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट इन अनुमानोंके जो उदाहरण दिये गये हैं वे न्यायभाष्यगत उदाहरणोंसे भिन्न तथा अनुयोगसूत्र^५ और युक्तिदीपिकासे^६ अभिन्न हैं। इससे प्रतीत होता है कि इसमें किसी प्राचीन परम्पराका अनुसरण है।

यहाँ इन दोनों ग्रन्थोंके संक्षिप्त परिचयका प्रयोजन केवल अनुमानके प्राचीन स्रोतको दिखाना है। परन्तु उत्तरकालमें इन ग्रन्थोंकी परम्परा नहीं अपनायी गयी। न्यायप्रवेशमें अनुमानसम्बन्धी अभिनव परम्पराएँ स्थापित की गयी हैं। साधन (परार्थानुमान) के पक्ष, हेतु और दृष्टान्त तीन अवयव, हेतुके पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्त्व और विपक्षसत्त्व तीन रूप, पक्ष, सपक्ष और विपक्षके लक्षण तथा पक्षलक्षणमें प्रत्यक्षाद्यविरुद्ध विशेषणका प्रवेश, जो प्रशस्तपादके अनुसरणका सूचक है, नवविध पक्षाभास, तीन हेत्वाभास और उनके प्रभेद, द्विविध दृष्टान्ताभास और प्रत्येकके पाँच-पाँच भेद, प्रत्यक्ष और अनुमानके भेदसे द्विविध

१. यथापूर्वमुक्तास्त्रिविधाः। असिद्धोऽनैकान्तिको विरुद्धश्चेति हेत्वाभासाः।—तर्कशास्त्र पृष्ठ ४०।

२. वही, पृष्ठ ३।

३. उपायहृदय पृष्ठ ३।

४. वही, पृष्ठ ६-१७, १८-२१, २२-२५, २६-३२।

५. यथा षडंगुलि सपिडकमूर्धनि बालं दृष्ट्वा पश्चाद्वृद्धं बहुश्रुतं देवदत्तं दृष्ट्वा षडंगुलिस्मरणात् सोऽयमिति पूर्ववत्। शेषवत् यथा, सागरसलिलं पीत्वा तल्लवणं समनुभूय शेषमपि सलिलं तुल्यमेव लवणमिति।—वही, पृष्ठ १३।

६. सं० मुनिश्री कन्हैयालाल, मूलमुत्ताणि, अ० सू० पृष्ठ ५३९।

७. यु० दी० का० ५, पृष्ठ ४५।

८. न्या० प्र० पृष्ठ १-८।

प्रमाण, लिङ्गसे होनेवाले अर्थ (अनुमेय) दर्शनको अनुमान; हेत्वाभासपूर्वक होनेवाले ज्ञानको अनुमानाभास, दूषण और दूषणाभास आदि अनुमानोपयोगी तत्त्वोंका स्पष्ट निरूपण करके बौद्ध तर्कशास्त्रको अत्यधिक पुष्ट तथा पल्लवित किया गया है। इसी प्रयोजनको पुष्ट और बढ़ावा देनेके लिए दिङ्नागने न्यायद्वार, प्रमाण-समुच्चय सवृत्ति, हेतुचक्रसमर्थन आदि ग्रन्थोंकी^१ रचना करके उनमें प्रमाणका विशेषतया अनुमानका विचार किया है।

धर्मकीर्तिने प्रमाणसमुच्चयपर अपना प्रमाणवार्तिक लिखा है, जो उद्योतकरके न्यायवार्तिककी तरह व्याख्येय ग्रन्थसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण और यशस्वी हुआ। इन्होंने हेतुबिन्दु, न्यायबिन्दु आदि स्वतन्त्र प्रकरण-ग्रन्थोंकी भी रचना की है^२ और जिनसे बौद्ध तर्कशास्त्र न केवल समृद्ध हुआ, अपितु अनेक उपलब्धियाँ भी उसे प्राप्त हुई हैं। न्यायबिन्दुमें अनुमानका लक्षण और उसके द्विविध भेद तो न्यायप्रवेश प्रतिपादित ही हैं। पर अनुमानके अवयव धर्मकीर्तिने तीन न मानकर हेतु और दृष्टान्त ये दो^३ अथवा केवल एक हेतु^४ ही माना है। हेतु के तीन भेद (स्वभाव, कार्य और अनुपलब्धि), अविनाभावनियामक तादात्म्य और तदुत्पत्तिस्म्बन्धद्वय, प्यारह अनुपलब्धियाँ आदि चिन्तन धर्मकीर्तिकी देन हैं। इन्होंने जहाँ दिङ्नागके विचारोंका समर्थन किया है वहाँ उनकी कई मान्यताओंकी आलोचना भी की है। दिङ्नागने विरुद्ध हेत्वाभासके भेदोंमें इष्टविधातकृत नामक तृतीय विरुद्ध हेत्वाभास, अनेकान्तिकभेदोंमें विरुद्धाव्यभिचारी और साधनावयवोंमें दृष्टान्तको स्वीकार किया है। धर्मकीर्तिने न्यायबिन्दुमें इन तीनोंकी समीक्षा की है।^५ इनकी विचार-धाराको उनकी शिष्यपरम्परामें होनेवाले देवेन्द्रबुद्धि, शान्तभद्र, विनीतदेव, अर्चट, धर्मोत्तर, प्रज्ञाकर आदिने पुष्ट किया और अपनी व्याख्याओं-टीकाओं आदि द्वारा प्रवृद्ध किया है। इस प्रकार बौद्धतर्कशास्त्रके विकासने भी भारतीय अनुमानको अनेक रूपोंमें समृद्ध किया है।

(घ) मीमांसक-दर्शनमें अनुमानका विकास

बौद्धों और नैयायिकोंके न्यायशास्त्रके विकासका अवश्यम्भावी परिणाम यह हुआ कि मीमांसक जैसे दर्शनोंमें, जहाँ प्रमाणकी चर्चा गौण थी, कुमारिलने श्लोकवार्तिक, प्रभाकरने बृहती, शालिकनाथने बृहतीपर पंचिका और पार्थसारथिने शास्त्रदीपिकान्तर्गत तर्कपाद जैसे ग्रन्थ लिखकर तर्कशास्त्रको मीमांसक दृष्टिसे प्रतिष्ठित किया। श्लोकवार्तिकमें तो कुमारिलने^६ एक स्वतन्त्र अनुमान-परिच्छेदकी रचना करके अनुमानका विशिष्ट चिन्तन किया है और व्याप्य हो क्यों गमक होता है इसका सूक्ष्म विचार करते हुए उन्होंने व्याप्य एवं व्याप्तिके सम और विषम दो रूप बतलाकर अनुमानकी समृद्धि की है।

१. पं० दलसुखभाई मालवाणिया, धर्मोत्तर-प्रदीप, प्रस्ताव० पृष्ठ ४१।

२. धर्मोत्तरप्रदीप, प्रस्तावना, पृष्ठ ४४।

३. अथवा तस्यैव साधनस्य यन्नाङ्गं प्रतिज्ञोपनयनिगमनादि.....।—संपादक राहुल सांकृत्यायन, वादन्या० पृष्ठ ६१।

४. धर्मकीर्ति, न्यायबिन्दु, तृतीय परि०, पृष्ठ ९१।

५. (क) तत्र च तृतीयोऽपीष्टविधातकृद्विरुद्धः।...स इह कस्मान्नोक्तः। अनयोरेवान्तर्भावात्।

(ख) विरुद्धाव्यभिचार्यपि संशयहेतुरुक्तः। स इह कस्मान्नोक्तः। अनुमानविषयेऽ-सम्भवात्।

(ग) त्रिरूपो हेतुरुक्तः। तावत्तैवार्थप्रतीतिरिति न पृथग्दृष्टान्तो नाम साधनावयवः कश्चित्।—न्यायबि० पृष्ठ ७९-८०, ८६, ९१।

६. मी० श्लो०, अनुमा० परि०, श्लोक ४-७ तथा ८-१७१।

(अ) वेदान्त और सांख्यदर्शनमें अनुमान-विकास

वेदान्तमें प्रमाणशास्त्रकी दृष्टिसे वेदान्तपरिभाषा जैसे ग्रन्थ लिखे गये हैं। सांख्य विद्वान् भी पीछे नहीं रहे। ईश्वरकृष्णने अनुमानका प्रामाण्य स्वीकार करते हुए उसे त्रिविध प्रतिपादित किया है। माठर, युक्तिदीपिकाकार; विज्ञानभिक्षु और वाचस्पति आदिने अपनी व्याख्याओं द्वारा उसे सम्पुष्ट और विस्तृत किया है।

जैनदर्शनमें अनुमान-विकास

जैन वाङ्मयमें अनुमानका क्या रूप रहा है और उसका विकास किस प्रकार हुआ, इस सम्बन्धमें विचार करेंगे।

(क) षट्खण्डागममें हेतुवादका उल्लेख

जैन श्रुतका आलोडन करनेपर ज्ञात होता है कि षट्खण्डागममें श्रुतके पर्याय-नामोंमें एक 'हेतुवाद'^१ नाम भी परिगणित है, जिसका व्याख्यान आचार्य वीरसेनने हेतुद्वारा तत्सम्बद्ध अन्य वस्तुका ज्ञान करना किया है और जिसपरसे उसे स्पष्टतया अनुमानार्थक माना जा सकता है, क्योंकि अनुमानका भी हेतुसे साध्यका ज्ञान करना अर्थ है। अतएव हेतुवादका व्याख्यान हेतुविद्या, तर्कशास्त्र, युक्तिशास्त्र और अनुमानशास्त्र किया जाता है। स्वामी समन्तभद्रने सम्भवतः ऐसे ही शास्त्रको 'युक्त्यनुशासन'^२ कहा है और जिसे उन्होंने दृष्ट (प्रत्यक्ष) और आगमसे अविरुद्ध अर्थका प्ररूपक बतलाया है।

(ख) स्थानांगसूत्रमें हेतु-निरूपण

स्थानांगसूत्र^३ में 'हेतु' शब्द प्रयुक्त है और उसका प्रयोग प्रामाणसामान्य^४ तथा अनुमानके प्रमुख अंग हेतु (साधन) दोनोंके अर्थमें हुआ है। प्रमाणसामान्यके अर्थमें उसका प्रयोग इस प्रकार है—

१. हेतु चार प्रकारका है—

१. प्रत्यक्ष, २. अनुमान, ३. उपमान, ४. आगम।

गौतमके न्यायसूत्रमें भी ये चार भेद अभिहित हैं। पर वहाँ इन्हें प्रमाणके भेद कहा है।

हेतुके अर्थमें हेतु शब्द निम्न प्रकार व्यवहृत हुआ है—

२. हेतुके चार भेद हैं—

१. विधि विधि—(साध्य और साधन दोनों सद्भावरूप हों)

२. विधि-निषेध—(साध्य विधिरूप और साधन निषेधरूप)

३. निषेध-विधि—(साध्य निषेधरूप और हेतु विधिरूप)

४. निषेध-निषेध—(साध्य और साधन दोनों निषेधरूप हों)

१.हेतुवादो णयवादो परवादो मग्गवादो सुदवादो....।

—भूतबली-पुष्पदन्त, षट्खण्डा० ५।५।५१; सोलापुर संस्करण १९६५।

२. दृष्टागमाभ्यामविरुद्धमर्थप्ररूपणं युक्त्यनुशासनं ते।

—समन्तभद्र, युक्त्यनुशा० का० ४८; वीरसेवामन्दिर, दिल्ली।

३. अथवा हेऊ चउव्विहे पन्नते तं जहा—पच्चक्खे अनुमाने उवमे आगमे। अथवा हेऊ चउव्विहे पन्नते तं जहा—अत्थि तं अत्थि सो हेऊ, अत्थि तं णत्थि सो हेऊ, णत्थि तं अत्थि सो हेऊ, णत्थि तं णत्थि सो हेऊ।—स्थानांगसू० पृष्ठ ३०९-३१०।

४. हिनोति परिच्छिन्नत्यर्थमिति हेतुः।

इन्हें हम क्रमशः निम्न नामोंसे व्यवहृत कर सकते हैं—

- | | |
|----------------------------------|------------------------------|
| १. विधिसाधक विधिरूप ^१ | अविरुद्धोपलब्धि ^२ |
| २. विधिसाधक निषेधरूप | विरुद्धानुपलब्धि |
| ३. निषेधसाधक विधिरूप | विरुद्धोपलब्धि |
| ४. प्रतिषेधसाधक प्रतिषेधरूप | अविरुद्धानुपलब्धि |

इनके उदाहरण निम्न प्रकार दिये जा सकते हैं—

१. अग्नि है, क्योंकि धूम है ।
२. इस प्राणीमें व्याधिविशेष है, क्योंकि निरामय चेष्टा नहीं है ।
३. यहाँ शीतस्पर्श नहीं है, क्योंकि उष्णता है ।
४. यहाँ धूम नहीं है, क्योंकि अग्निका अभाव है ।

(ग) भगवतीसूत्रमें अनुमानका निर्देश

भगवतीसूत्रमें^३ भगवान् महावीर और उनके प्रधान शिष्य गौतम (इन्द्रभूति) गणधरके संवादमें प्रमाणके पूर्वोक्त चार भेदोंका उल्लेख आया है, जिनमें अनुमान भी सम्मिलित है ।

(घ) अनुयोगसूत्रमें अनुमान-निरूपण

अनुमानकी कुछ अधिक विस्तृत चर्चा अनुयोगसूत्रमें उपलब्ध होती है । इसमें अनुमानके भेदोंका निर्देश करके उनका सोदाहरण निरूपण किया गया है ।

१. अनुमान-भेद :

इसमें^४ अनुमानके तीन भेद बताये हैं । यथा—

१. पुव्ववं (पूर्ववत्)
२. सेसवं (शेषवत्)
३. दिट्ठसाहम्मवं (दृष्टसाधर्म्यवत्)

१. पुव्ववं^५—जो वस्तु पहले देखी गयी थी, कालान्तरमें किञ्चित् परिवर्तन होनेपर भी उसे प्रत्यक्ष-भिज्ञाद्वारा पूर्वलिङ्गदर्शनसे अवगत करना 'पुव्ववं' अनुमान है । जैसे बच्चेपनमें देखे गये बच्चेको युवावस्थामें किञ्चित् परिवर्तनके साथ देखनेपर भी पूर्व चिह्नों द्वारा ज्ञात करना कि 'वही शिशु' है । यह 'पुव्ववं' अनुमान क्षेत्र, वर्ण, लङ्छन, मस्सा और तिल प्रभृति चिह्नोंसे सम्पादित किया जाता है ।

२. सेसवं^६—इसके हेतुभेदसे पाँच भेद हैं—

१. धर्मभूषण, न्यायदी० पृ० ९५-९९, वीरसेवामन्दिर, दिल्ली ।

२. माणिक्यनन्दि, परीक्षामु० ३।५७-५८ ।

३. तुलना कीजिए—

१. पर्वतोऽयमग्निमान् धूमवत्त्वान्यथानुपपत्तेः—धर्मभूषण, न्यायदी० पृ० ९५ ।

२. यथाऽस्मिन् प्राणिनि व्याधिविशेषोऽस्ति निरामयचेष्टानुपलब्धेः ।

३. नास्त्यत्र शीतस्पर्श औष्ण्यात् ।

४. नास्त्यत्र धूमोऽनग्नेः ।—माणिक्यनन्दि, परीक्षामु० ३।८७, ७६, ८२ ।

४. गोयमा णो तिण्ठे समट्ठे ।...से किं तं पमाणं ? पमाणे छउव्विहे पणत्ते । तं जहा—पञ्चवक्खे अणुमाणे ओवम्मं जहा अणुयोगदारे तहा णेयव्वं पमाणं ।—भगवती० ५, ३, १९१-९२ ।

५, ६, ७. अणुमाणे तिविहे पणत्ते । तं जहा—१. पुव्ववं, २. सेसवं, ३. दिट्ठसाहम्मवं । से किं पुव्ववं ? पुव्ववं—

१. कार्यानुमान, २. कारणानुमान, ३. गुणानुमान, ४. अवयवानुमान, ५. आश्रयी-अनुमान

१. **कार्यानुमान**—कार्यसे कारणको अवगत करना कार्यानुमान है। जैसे—शब्दसे शंखको, ताडनसे भेरीको, ढाडनेसे वृषभको, केकारवसे मयूरको, हिनहिनाने (ह्लेषित) से अश्वको, गुलगुलायित (चिधाड़ने) से हाथीको और घणाघणायित (घनघनाने) से रथको अनुमित करना।^१

२. **कारणानुमान**—कारणसे कार्यका अनुमान करना कारणानुमान है। जैसे—तन्तुसे पटका, बीरणसे कटका, मृत्पिण्डसे घड़ेका अनुमान करना। तात्पर्य यह कि जिन कारणोंसे कार्योंकी उत्पत्ति होती है, उनके द्वारा उन कार्योंका अवगम प्राप्त करना 'कारण' नामका 'सेसवं' अनुमान है।^२

३. **गुणानुमान**—गुणसे गुणीका अनुमान करना गुणानुमान है। यथा—गन्धसे पुष्पका, रससे लवणका, स्पर्शसे वस्त्रका और निकषसे सुवर्णका अनुमान करना।^३

४. **अवयवानुमान**—अवयवसे अवयवीका अनुमान करना अवयवानुमान है। यथा—सींगसे महिषका, शिखासे कुक्कुटका, शृण्णादण्डसे हाथीका, दाढ़से वराहका, पिच्छसे मयूरका, लांगूलसे वानरका, खुरासे अश्वका, नखसे व्याघ्रका, बालाग्रसे चमरीगायका, दो पैरसे मनुष्यका, चार पैरसे गौ आदिका, बहुपादसे कनगोजर (पटार) का, केसरसे सिंहका, ककुभसे वृषभका, चूड़ीसहित बाहुसे महिलाका, बद्धपरिकरतासे योद्धाका, वस्त्रसे महिलाका, धान्यके एक कणसे द्रोण पाकका और एक गाथासे कविका अनुमान करना।^४

५. **आश्रयी-अनुमान**—आश्रयीसे आश्रयका अनुमान करना आश्रयी-अनुमान है। यथा—धूमसे अग्नि का, बलाकासे जलका, विशिष्ट मेघोंसे वृष्टिका और शील-समाचारसे कुलपुत्रका अनुमान करना।^५

शेषवत्के इन पाँचों भेदोंमें अविनाभावी एकसे शेष (अवशेष) का अनुमान होनेसे शेषवत् कहा है।

माया पुत्तं जहा नटुं जुवाणं पुणरागयं ।

काई पच्चभिजाणेज्जा पुव्वलिणेण केणई ।।

तं जहा—खेत्येण वा, वण्णेण वा, लंछणेण वा, मसेण वा, तिलेण वा । से तं पुव्ववं । से कि तं सेसवं ? सेसवं पंचविहं पणत्तं । तं जहा—१. कज्जेणं, २. कारणेणं, ३. गुणेणं, ४. अवयवेणं, ५. आसएणं ।—मुनि श्री कन्हैयालाल, अनुयोगद्वारसूत्र, मूलसुत्ताणि, पृ० ५३९ ।

१. कज्जेणं—संखं सट्ठेणं, भेरिं ताडिणं, वसभं ढक्किणं, मोरं किकाइणं, हयं हेसिणं, गयं गुलगुलाइणं, रहं घणघणाइणं, से तं कज्जेणं ।—अनुयोग० उपक्रमाधिकार प्रमाणद्वार, पृष्ठ ५३९ ।

२. कारणेणं—तंतवो पडस्स कारणं ण पडो तंतुकारणं, बीरण कडस्स कारणं ण कडो बीरणकारणं, मिप्पिडो घडस्स कारणं ण घडो मिप्पिडकारणं, से तं कारणेणं ।—वही, पृष्ठ ५४० ।

३. गुणेणं—सुवणं निकसेणं, पुप्फं गंधेणं, लवणं रसेणं, मइरं आसायएणं, वत्थं फासेणं, से तं गुणेणं ।—वही, पृष्ठ ५४० ।

४. अवयवेणं—महिं सिणेणं, कुक्कुडं सिहाएणं, हत्थि विसासेणं, वराहं दाढाएणं, मोरं पिच्छेणं, आसं खुरेणं, वग्गं नहेणं, चमरिं बालागेणं, वाणरं लंगुलेणं, दुपयं मणुस्सादि, चउप्पयं गवमादि, बहुपयं गोमि आदि, सीहं केसरेणं, वसहं ककुहेणं, महिलं वलयबाहाए, गाहा-परिअरबंधेण भंडं जाणिज्जा, महिलियं वस्सेणं, सित्थेण दोणपागं, कवि च एक्काए गाहाए, से तं अवयवेणं ।—वही, पृष्ठ ५४० ।

५. आसएणं—अग्निं धूमेणं, सलिलं बलागेणं, बुट्ठि अम्भविकारेणं, कुलपुत्तं सीलसमायारेणं । से तं आसएणं । से तं सेसवं ।—अनुयोग० उपक्रमाधिकार प्रमाणद्वार, पृष्ठ ५४०-४१

३. दिट्ठसाहम्मव—इस अनुमानके दो भेद हैं^१। यथा—

१. सामन्नदिट्ठ (सामान्य-दृष्ट), २. विसेसदिट्ठ (विशेषदृष्ट)।

१. किसी एक वस्तुको देखकर तत्सजातीय सभी वस्तुओंका साधर्म्य ज्ञात करना या बहुत वस्तुओंको एक-सा देखकर किसी विशेष (एक) में तत्साधर्म्यका ज्ञान करना सामान्यदृष्ट है। यथा—जैसा एक मनुष्य है, वैसे बहुतसे मनुष्य हैं। जैसे बहुतसे मनुष्य हैं वैसे एक मनुष्य है। जैसा एक करिशावक है वैसे बहुतसे करिशावक हैं। जैसे बहुतसे करिशावक हैं वैसे एक करिशावक है। जैसा एक कार्षापण है वैसे अनेक कार्षापण हैं, जैसे अनेक कार्षापण हैं, वैसे एक कार्षापण है। इस प्रकार सामान्यधर्मदर्शनद्वारा ज्ञातसे अज्ञातका ज्ञान करना सामान्यदृष्ट अनुमानका प्रयोजन है।

२. जो अनेक वस्तुओंमेंसे किसी एकको पृथक् करके उसके वैशिष्ट्यका प्रत्यभिज्ञान कराता है वह विशेषदृष्ट है। यथा—कोई एक पुरुष बहुतसे पुरुषोंके बीचमें पूर्वदृष्ट पुरुषका प्रत्यभिज्ञान करता है कि यह वही पुरुष है। या बहुतसे कार्षापणोंके मध्यमें पूर्वदृष्ट कार्षापणको देखकर प्रत्यभिज्ञा करना कि यह वही कार्षापण है। इस प्रकारका ज्ञान विशेषदृष्ट दृष्टसाधर्म्यवत् अनुमान है।

२. कालभेदसे अनुमानका त्रैविध्य^२

कालकी दृष्टिसे भी अनुयोगद्वारमें अनुमानके तीन प्रकारोंका प्रतिपादन उपलब्ध है। यथा—१. अतीतकालग्रहण, २. प्रत्युत्पन्नकालग्रहण और ३. अनागतकालग्रहण।

१. अतीतकालग्रहण—उत्तृणवन, निष्पन्नशस्या पृथ्वी, जलपूर्ण कुण्ड-सर-नदी-दीधिका-तडाक आदि देखकर अनुमान करना कि सुवृष्टि हुई है, यह अतीतकालग्रहण है।

२. प्रत्युत्पन्नकालग्रहण—भिक्षाचर्यामें प्रचुर भिक्षा मिलती देख अनुमान करना कि सुभिक्ष है, यह प्रत्युत्पन्नकालग्रहण है।

३. अनागतकालग्रहण—बादली निर्मलता, कृष्ण पहाड़, सविद्युत् मेघ, मेघगर्जन, वातोद्भ्रम, रक्त और प्रस्निग्ध सन्ध्या, वारुण या माहेन्द्रसम्बन्धी या और कोई प्रशस्त उत्पात इनको देख कर अनुमान करना कि सुवृष्टि होगी, यह अनागतकालग्रहण अनुमान है।

उक्त लक्षणोंका विपर्यय देखने पर तीनों कालोंके ग्रहणमें विपर्यय भी हो जाता है। अर्थात् सूखी जमीन, शुष्क तालाब आदि देखने पर वृष्टिके अभावका, भिक्षा कम मिलने पर वर्तमान दुर्भिक्षा और प्रसन्न दिशाओं आदिके होने पर अनागत कुवृष्टिका अनुमान होता है, यह भी अनुयोगद्वारमें सोदाहरण अभिहित है। उल्लेखनीय है कि कालभेदसे तीन प्रकारके अनुमानोंका निर्देश चरकसूत्रस्थान (अ० ११।२१, २२) में भी मिलता है।

न्यायसूत्र,^३ उपायहृदय^४ और सांख्यकारिका^५ में भी पूर्ववत् आदि अनुमानके तीन भेदोंका प्रतिपादन है। उनमें प्रथमके दो वही हैं जो ऊपर अनुयोगद्वारमें निर्दिष्ट हैं। किन्तु तीसरे भेदका नाम अनुयोगकी

१. से कि तं दिट्ठसाहम्मवं । दिट्ठसाहम्मवं दुविहं पणत्तं । जहा—सामन्नदिट्ठं च विसेसदिट्ठं च ।

—वही, पृष्ठ ५४१-४२

२. तस्स समासओ तिविहं गहणं भवइ । तं जहा—१. अतीतकालग्रहणं, २. पडुप्पणकालग्रहणं, ३. अणागयकालग्रहणं ।—वही, पृष्ठ ५४१-५४२ ।

३. अक्षपाद, न्यायसू० १।१।५ ।

४. उपायहृ० पृ० १३ ।

५. ईश्वरकृष्ण, सां० का० ५, ६ ।

तरह दृष्टसाधर्म्यवत् न होकर सामान्यतोदृष्ट है। अनुयोगद्वारगत पूर्ववत् जैसा उदाहरण उपायहृदय (पृ० १३) में भी आया है।

इन अनुमानभेद-प्रभेदों और उनके उदाहरणोंके विवेचनसे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि गौतमके न्यायसूत्रमें जिन तीन अनुमानभेदोंका निर्देश है वे उस समयकी अनुमान-चर्चामें वर्तमान थे। अनुयोग-द्वारके अनुमानोंकी व्याख्या अभिधामूलक है। पूर्ववत्का शाब्दिक अर्थ है पूर्वके समान किसी वस्तुको वर्तमानमें देखकर उसका ज्ञान प्राप्त करना। स्मरणीय है कि द्रष्टव्य वस्तु पूर्वोत्तरकालमें मूलतः एक ही है और जिसे देखा गया है उसके सामान्य धर्म पूर्वकालमें भी विद्यमान रहते हैं तथा उत्तरकालमें भी पाये जाते हैं। अतः पूर्वदृष्टके आधारपर उत्तरकालमें देखी वस्तुकी जानकारी प्राप्त करना पूर्ववत् अनुमान है। इस प्रक्रियामें पूर्वांश अज्ञात है और उत्तरांश ज्ञात। अतः ज्ञातसे अज्ञात (अतीत) अंशको जानकारी (प्रत्यभिज्ञा) की जाती है। जैसा कि अनुयोग और उपायहृदयमें दिये गये उदाहरणसे प्रकट है। शेषवत्में कार्य-कारण, गुण-गुणी, अवयव-अवयवी एवं आश्रय-आश्रयीमेंसे अविनाभावी एक अंशको ज्ञातकर शेष (अवशिष्ट) अंशको जाना जाता है। शेषवत् शब्दका अभिधेयार्थ भी यही है। साधर्म्यको देखकर तत्तुल्यका ज्ञान प्राप्त करना दृष्ट-साधर्म्यवत् अनुमान है। यह भी वाच्यार्थमूलक है। यद्यपि इसके अधिकांश उदाहरण सादृश्यप्रत्यभिज्ञानके तुल्य हैं। पर शब्दार्थके अनुसार यह अनुमान सामान्यदर्शनपर आश्रित है। दूसरे, प्राचीन कालमें प्रत्यभि-ज्ञानको अनुमान ही माना जाता था। उसे पृथक् माननेकी परम्परा दार्शनिकोंमें बहुत पीछे आयी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनुयोगसूत्रमें उक्त अनुमानोंकी विवेचना पारिभाषिक न होकर अभि-धामूलक है।

पर न्यायसूत्रके व्याख्याकार वात्स्यायनने उक्त तीनों अनुमान-भेदोंकी व्याख्या वाच्यार्थके आधारपर नहीं की। उन्होंने उनका स्वरूप पारिभाषिक शब्दावलीमें ग्रथित किया है। इससे यदि यह निष्कर्ष निकाला जाय कि पारिभाषिक शब्दोंमें प्रतिपादित स्वरूपकी अपेक्षा अवयवार्थ द्वारा विवेचित स्वरूप अधिक मौलिक एवं प्राचीन होता है तो अयुक्त न होगा, क्योंकि अभिधाके अनन्तर ही लक्षणा या व्यञ्जना या रूढ़ शब्दावली द्वारा स्वरूप-निर्धारण किया जाता है। दूसरे, वात्स्यायनकी त्रिविध अनुमान-व्याख्या अनुयोगद्वारसूत्रकी अपेक्षा अधिक पुष्ट एवं विकसित है। अनुयोगद्वारसूत्रमें जिस तथ्यको अनेक उदाहरणों द्वारा उपस्थित किया है उसे वात्स्यायनने संक्षेपमें एक-दो पंक्तियोंमें ही निबद्ध किया है। अतः भाषाविज्ञान और विकास-सिद्धान्तकी दृष्टिसे अनुयोगद्वारका अनुमान-निरूपण वात्स्यायनके अनुमान-व्याख्यानसे प्राचीन प्रतीत होता है।

(ड) अवयव-चर्चा :

अनुमानके अवयवोंके विषयमें आगमोंमें तो कोई कथन उपलब्ध नहीं होता। किन्तु उनके आधारसे रचित तत्त्वार्थसूत्रमें तत्त्वार्थसूत्रकारने^१ अवश्य अवयवोंका नामोल्लेख किये बिना पक्ष (प्रतिज्ञा), हेतु और दृष्टान्त इन तीनोंके द्वारा मुक्त जीवका ऊर्ध्वगमन सिद्ध किया है, जिससे ज्ञात होता है कि आरम्भमें जैन परम्परामें अनुमानके उक्त तीन अवयव मान्य रहे हैं। समन्तभद्र^२, पूज्यपाद^३ और सिद्धसेनने^४ भी इन्हीं तीन अवयवोंका निर्देश किया है। भद्रबाहुने^५ दशवैकालिकनिर्युक्तिमें अनुमानवाक्यके दो, तीन, पाँच, दश और

१. त० सू० १०।५, ६, ७।

२. आप्तमी० ५, १७, १८ तथा युक्त्यनु० ५३।

३. स० सि० १०।५, ६, ७।

४. न्यायाव० १३, १४, १७, १८, १९।

५. दशवै० नि० गा० ४९-१३७।

दश इस प्रकार पाँच तरहसे अवयवोंकी चर्चा की है। प्रतीत होता है कि अवयवोंकी यह विभिन्न संख्या विभिन्न प्रतिपाद्योंकी^१ अपेक्षा बतलायी है।

ध्यातव्य है कि वात्स्यायन द्वारा समालोचित तथा युक्तिदीपिकाकार द्वारा विवेचित जिज्ञासादि दशावयव भद्रबाहुके दशावयवोंसे भिन्न हैं।

उल्लेखनीय है कि भद्रबाहुने मात्र उदाहरणसे भी साध्य-सिद्धि होनेकी बात कही है जो किसी प्राचीन परम्पराकी प्रदर्शक है।^२

इस प्रकार जैनागमोंमें हमें अनुमान-मीमांसाके पुष्कल बीज उपलब्ध होते हैं। यह सही है कि उनका प्रतिपादन केवल निःश्रेयसाधिगम और उसमें उपयोगी तत्त्वोंके ज्ञान एवं व्यवस्थाके लिए ही किया गया है। यही कारण है कि उनमें न्यायदर्शनकी तरह वाद, जल्प और वितण्डापूर्वक प्रवृत्त कथाओं, जातियों, निग्रह-स्थानों, छलों तथा हेत्वाभासोंका कोई उल्लेख नहीं है।

(च) अनुमानका मूल-रूप

आगमोत्तर कालमें जब ज्ञानमीमांसा और प्रमाणमीमांसाका विकास आरम्भ हुआ तो उनके विकास-के साथ अनुमानका भी विकास होता गया। आगम-वर्णित मति, श्रुत आदि पाँच ज्ञानोंको प्रमाण कहने और उन्हें प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दो भेदोंमें विभक्त करने वाले सर्वप्रथम आचार्य गृद्धपिच्छ हैं। उन्होंने^३ शास्त्र और लोकमें व्यवहृत स्मृति, संज्ञा, चिन्ता और अभिनिबोध इन चार ज्ञानोंको भी एक सूत्र द्वारा परोक्ष-प्रमाणके अन्तर्गत समाविष्ट करके प्रमाणशास्त्रके विकासका सूत्रपात किया तथा उन्हें परोक्ष प्रमाणके आद्य प्रकार मतिज्ञानका पर्याय प्रतिपादन किया। इन पर्यायोंमें अभिनिबोधका जिस क्रमसे और जिस स्थानपर निर्देश हुआ है उससे ज्ञात होता है कि सूत्रकारने^४ उसे अनुमानके अर्थमें प्रयुक्त किया है। स्पष्ट है कि पूर्व-पूर्वको प्रमाण और उत्तर-उत्तरको प्रमाण-फल बतलाना उन्हें अभीष्ट है। मति (अनुभव-धारणा) पूर्वक स्मृति, स्मृतिपूर्वक संज्ञा, संज्ञा-पूर्वक चिन्ता और चिन्तापूर्वक अभिनिबोध ज्ञान होता है, ऐसा सूत्रसे ध्वनित है। यह चिन्तापूर्वक होनेवाला अभिनिबोध अनुमानके अतिरिक्त अन्य नहीं है। अतएव जैन परम्परामें अनुमान-का मूलरूप 'अभिनिबोध' और 'पूर्वोक्त 'हेतुवाद' में उसी प्रकार समाहित है जिस प्रकार वह वैदिक परम्परामें 'वाकोवाक्यम्' और 'आन्वीक्षिकी' में निविष्ट है।

उपर्युक्त मीमांसासे दो तथ्य प्रकट होते हैं। एक तो यह कि जैन परम्परामें ईस्वी पूर्व शताब्दियोंसे ही अनुमानके प्रयोग, स्वरूप और भेद-प्रभेदोंकी समीक्षा की जाने लगी थी तथा उसका व्यवहार हेतुजन्य ज्ञानके अर्थमें होने लगा था। दूसरा यह कि अनुमानका क्षेत्र बहुत विस्तृत और व्यापक था। स्मृति, संज्ञा और चिन्ता, जिन्हें परवर्ती जैन तार्किकोंने परोक्ष प्रमाणके अन्तर्गत स्वतन्त्र प्रमाणोंका रूप प्रदान किया है,

१. प्रयोगपरिपाटी तु प्रतिपाद्यानुरोधतः ।—प्र० परी० पृ० ४९ में उद्धृत कुमारनन्दिका वाक्य।

२. श्रीदलमुखभाई मालवणिया, आगमयुगका जैन दर्शन, प्रमाणखण्ड, पृ० १५७।

३. मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम्। तत्प्रमाणे। आद्ये परोक्षम्। प्रत्यक्षमन्यत् ।—तत्त्वा० सू० ११९, १०, ११, १२।

४. मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ।—वही, ११३।

५. गृद्धपिच्छ, त० सू० १।१३।

अनुमान (अभिनिबोध) में ही सम्मिलित थे । वादिराजने^१ प्रमाणनिर्णयमें सम्भवतः ऐसी ही परम्पराका निर्देश किया है जो उन्हें अनुमानके अन्तर्गत स्वीकार करती थी । अर्थापत्ति, सम्भव, अभाव जैसे परोक्ष ज्ञानोंका भी इसीमें समावेश किया गया है ।^२

(छ) अनुमानका तार्किक विकास

अनुमानका तार्किक विकास स्वामी समन्तभद्रसे आरम्भ होता है । आप्तमीमांसा, युक्त्यनुशासन और स्वयम्भूस्तोत्रमें उन्होंने अनुमानके अनेकों प्रयोग प्रस्तुत किये हैं, जिनमें उसके उपादानों—साध्य, साधन, पक्ष, उदाहरण, अविनाभाव आदिका निर्देश है । सिद्धसेनका न्यायावतार न्याय (अनुमान) का अवतार ही है । इसमें अनुमानका स्वरूप, उसके स्वार्थ-परार्थ द्विविध भेद, उनके लक्षण, पक्षका स्वरूप, पक्षप्रयोगपर बल, हेतुके तथोपपत्ति और अन्यथानुपपत्ति द्विविध प्रयोगोंका निर्देश, साधर्म्य-वैधर्म्य दृष्टान्तद्वय, अन्तर्व्याप्तिके द्वारा ही साध्यसिद्धि होनेपर भार, हेतुका अन्यथानुपपन्नत्वलक्षण, हेत्वाभास और दृष्टान्ताभास जैसे अनुमानोपकरणोंका प्रतिपादन किया गया है । अकलंकके न्याय-विवेचनने तो उन्हें 'अकलंक न्याय' का संस्थापक एवं प्रवर्तक ही बना दिया है । उनके विशाल न्याय-प्रकरणोंमें न्यायविनिश्चय, प्रमाणसंग्रह, लघीयस्त्रय और सिद्धिविनिश्चय जैन प्रमाणशास्त्रके मूर्धन्य ग्रन्थोंमें परिगणित हैं । हरिभद्रके शास्त्रवार्तिसमुच्चय, अनेकान्त-जयपताका आदि ग्रन्थोंमें अनुमान-चर्चा निहित है । विद्यानन्दने अष्टसहस्री, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, प्रमाण-परीक्षा, पत्रपरीक्षा जैसे दर्शन एवं न्याय-प्रबन्धोंको रचकर जैन न्यायवाङ्मयको समृद्ध किया है । माणिक्य-नन्दिका परीक्षामुख, प्रभाचन्द्रका प्रमेयकमलमार्तण्ड-न्यायकुमुदचन्द्र-युगल, अभयदेवकी सन्मतितर्कटीका, देवसूरिका प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार, अनन्तवीर्यकी सिद्धिविनिश्चयटीका, वादिराजका न्यायविनिश्चय-विवरण, लघु अनन्तवीर्यकी प्रमेयरत्नमाला, हेमचन्द्रकी प्रमाण-मीमांसा, धर्मभूषणकी न्यायदीपिका और यशोविजयकी जैन तर्कभाषा जैन अनुमानके विवेचक प्रमाणग्रन्थ हैं ।

अनुमानका स्वरूप

व्याकरणके अनुसार 'अनुमान' शब्दकी निष्पत्ति अनु + मा + ल्युट्से होती है । अनुका अर्थ है पश्चात् और मानका अर्थ है ज्ञान । अतः अनुमानका शाब्दिक अर्थ है पश्चाद्वर्ती ज्ञान । अर्थात् एक ज्ञानके बाद होनेवाला उत्तरवर्ती ज्ञान अनुमान है । यहाँ 'एक ज्ञान' से क्या तात्पर्य है ? मनीषियोंका अभिमत है कि प्रत्यक्ष ज्ञान ही एक ज्ञान है जिसके अनन्तर अनुमानकी उत्पत्ति या प्रवृत्ति पायी जाती है । गौतमने इसी कारण अनुमानको 'तत्पूर्वकम्^३—प्रत्यक्षपूर्वकम्' कहा है । वात्स्यायनका^४ भी अभिमत है कि प्रत्यक्षके बिना कोई अनुमान सम्भव नहीं । अतः अनुमानके स्वरूप-लाभमें प्रत्यक्षका सहकार पूर्वकारणके रूपमें अपेक्षित होता है । अतएव तर्कशास्त्री ज्ञात—प्रत्यक्षप्रतिपन्न अर्थसे अज्ञात—परोक्ष वस्तुकी जानकारी अनुमान द्वारा करते हैं ।^५

१. अनुमानमपि द्विविधं गौणमुख्यविकल्पात् । तत्र गौणमनुमानं त्रिविधं स्मरणं प्रत्यभिज्ञा तर्कश्चेति ।—।

—वादिराज, प्र० नि०, पृष्ठ ३३; माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला बम्बई ।

२. अकलंकदेव, त० वा० १।२०, पृष्ठ ७८; भारतीय ज्ञानपीठ, काशी ।

३. अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानम् ।—न्यायसू० १।१।५ ।

४. अथवा पूर्ववदिति—यत्र यथापूर्वं प्रत्यक्षभूतयोरन्यतरदर्शनेनान्यतरस्याप्रत्यक्षस्यानुमानम् । यथा धूमे-
नान्निरिति ।—न्यायभा० १।१।५, पृष्ठ २२ ।

५. यथा धूमेन प्रत्यक्षेणाप्रत्यक्षस्य वल्लेर्ग्रहणमनुमानम् ।—वही, २।१।४७, पृष्ठ १२० ।

कभी-कभी अनुमानका आधार प्रत्यक्ष न रहने पर आगम भी होता है। उदाहरणार्थ शास्त्रों द्वारा आत्माकी सत्ताका ज्ञान होनेपर हम यह अनुमान करते हैं कि 'आत्मा शाश्वत है, क्योंकि वह सत् है।' इसी कारण वात्स्यायनने^१ 'प्रत्यक्षागमाश्रितमनुमानम्' अनुमानको प्रत्यक्ष या आगमपर आश्रित कहा है। अनुमानका पर्यायशब्द अन्वीक्षा^२ भी है, जिसका शाब्दिक अर्थ एक वस्तुज्ञानकी प्राप्तिके पश्चात् दूसरी वस्तुका ज्ञान प्राप्त करना है। यथा—धूमका ज्ञान प्राप्त करनेके बाद अग्निका ज्ञान करना।

उपर्युक्त उदाहरणमें धूमद्वारा वह्निका ज्ञान इसी कारण होता है कि धूम वह्निका साधन है। धूमको अग्निका साधन-हेतु^३ माननेका भी कारण यह है कि धूमका अग्निके साथ नियत साहचर्य सम्बन्ध—अविनाभाव है। जहाँ धूम रहता है वहाँ अग्नि अवश्य रहती है। इसका कोई अपवाद नहीं पाया जाता। तात्पर्य यह है कि एक अविनाभावी वस्तुके ज्ञान द्वारा तत्सम्बद्ध इतर वस्तुका निश्चय करना अनुमान है।^४ अनुमानके अंग

अनुमानके उपर्युक्त स्वरूपका विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि धूमसे अग्निका ज्ञान करनेके लिए दो तत्त्व आवश्यक हैं—१. पर्वतमें धूमका रहना और २. धूमका अग्निके साथ नियत साहचर्य सम्बन्ध होना। प्रथमको पक्षधर्मता और द्वितीयको व्याप्ति कहा गया है। यही दो अनुमानके आधार अथवा अंग हैं।^५ जिस वस्तुसे जहाँ सिद्धि करना है उसका वहाँ अनिवार्य रूपसे पाया जाना पक्षधर्मता है। जैसे धूमसे पर्वतमें अग्निकी सिद्धि करना है तो धूमका पर्वतमें अनिवार्य रूपसे पाया जाना आवश्यक है। अर्थात् व्याप्यका पक्षमें रहना पक्षधर्मता है।^६ तथा साधनरूप वस्तुका साध्यरूप वस्तुके साथ ही सर्वदा पाया जाना व्याप्ति है। जैसे धूम अग्निके होनेपर ही पाया जाता है—उसके अभावमें नहीं, अतः धूमकी वह्निके साथ व्याप्ति है। पक्षधर्मता और व्याप्ति दोनों अनुमानके आधार हैं। पक्षधर्मताका ज्ञान हुए बिना अनुमानका उद्भव सम्भव नहीं है। उदाहरणार्थ—पर्वतमें धूमकी वृत्तिताका ज्ञान न होने पर वहाँ उससे अग्निका अनुमान नहीं किया जा सकता। अतः पक्षधर्मताका ज्ञान आवश्यक है। इसी प्रकार व्याप्तिका ज्ञान भी अनुमानके लिए परमावश्यक है। यतः पर्वतमें धूमदर्शनके अनन्तर भी तब तक अनुमानकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती, जब तक धूमका अग्निके साथ अनिवार्य सम्बन्ध स्थापित न हो जाए। इस अनिवार्य सम्बन्धका नाम ही नियत साहचर्य सम्बन्ध या व्याप्ति है।^७ इसके अभावमें अनुमानकी उत्पत्तिमें धूमज्ञानका कुछ भी महत्त्व नहीं है। किन्तु व्याप्तिज्ञानके होनेपर अनुमानके लिए उक्त धूमज्ञान महत्त्वपूर्ण बन जाता है और वह अग्नि-

१. वही, १।१।१। पृष्ठ ७।

२. वही, १।१।१, पृष्ठ ७।

३. साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुः।—माणिक्यनन्दि, परीक्षामु० ३।१५।

४. व्याप्यस्य ज्ञानेन व्यापकस्य निश्चयः, यथा वह्निर्धूमस्य व्यापक इति धूमस्तस्य व्याप्त इत्येवं तयोर्भूयः सहचारं पाकस्थानादौ दृष्ट्वा पश्चात्पर्वतादौ उद्भूयमानशिखस्य धूमस्य दर्शने तत्र वह्निरस्तीति निश्चीयते।—वाचस्पत्यम्, अनुमानशब्द, प्रथम जिल्द पृष्ठ १८१, चौखम्बा, वाराणसी, सन् १९६२ ई०।

५. अनुमानस्य द्वे अंगे व्याप्तिः पक्षधर्मता च।—केशवमिश्र, तर्कभाषा, अनु० निरु०, पृष्ठ ८८, ८९।

६. व्याप्यस्य पर्वतादिवृत्तित्वं पक्षधर्मता।—अन्नभट्ट, तर्कसं० अनु० नि०, पृष्ठ ५७।

७. यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्राग्निरिति साहचर्यनियमो व्याप्तिः।—तर्कसं०, पृष्ठ ५४। तथा केशवमिश्र, तर्कभा० पृष्ठ ७२।

ज्ञानको उत्पन्न कर देता है। अतः अनुमानके लिए पक्षधर्मता और व्याप्ति इन दोनोंके संयुक्त ज्ञानकी आवश्यकता है। स्मरण रहे कि जैन तार्किकोंने^१ व्याप्तिज्ञानको ही अनुमानके लिए आवश्यक माना है, पक्षधर्मताके ज्ञानको नहीं; क्योंकि अपक्षधर्म कृत्तिकोदय आदि हेतुओंसे भी अनुमान होता है।

(क) पक्षधर्मता :

जिस पक्षधर्मताका अनुमानके आवश्यक अंगके रूपमें ऊपर निर्देश किया गया है उसरा व्यवहार न्यायशास्त्रमें कबसे आरम्भ हुआ, इसका यहाँ ऐतिहासिक विमर्श किया जाता है।

कणादके वैशेषिकसूत्र और अक्षपादके न्यायसूत्रमें न पक्ष शब्द मिलता है और न पक्षधर्मता शब्द। न्यायसूत्रमें^२ साध्य और प्रतिज्ञा शब्दोंका प्रयोग पाया जाता है, जिनका न्यायभाष्यकारने^३ प्रज्ञापनीय धर्मसे विशिष्ट धर्मी अर्थ प्रस्तुत किया है और जिसे पक्षका प्रतिनिधि कहा जा सकता है, पर पक्षशब्द प्रयुक्त नहीं है। प्रशस्तपादभाष्यमें^४ यद्यपि न्यायभाष्यकारकी तरह धर्मी और न्यायसूत्रकी तरह प्रतिज्ञा दोनों शब्द एकत्र उपलब्ध हैं। तथा लिंगको त्रिरूप बतलाकर उन तीनों रूपोंका प्रतिपादन काश्यपके नामसे दो कारिकाएँ उद्धृत करके किया है।^५ किन्तु उन तीन रूपोंमें भी पक्ष और धर्मपक्षता शब्दोंका प्रयोग नहीं है।^६ हाँ, 'अनुमेय सम्बद्धलिंग' शब्द अवश्य पक्षधर्मका बोधक है। पर 'पक्षधर्म' शब्द स्वयं उपलब्ध नहीं है।

पक्ष और पक्षधर्मता शब्दोंका स्पष्ट प्रयोग, सर्वप्रथम सम्भवतः बौद्ध तार्किक शंकरस्वामीके न्याय-प्रवेशमें^७ हुआ है। इसमें पक्ष, सपक्ष, विपक्ष, पक्षवचन, पक्षधर्म, पक्षधर्मवचन और पक्षधर्मत्व ये सभी शब्द प्रयुक्त हुए हैं। साथमें उनका स्वरूप-विवेचन भी किया है। जो धर्मके रूपमें प्रसिद्ध है वह पक्ष है। 'शब्द अनित्य है' ऐसा प्रयोग पक्षवचन है। 'क्योंकि वह कृतक है' ऐसा वचन पक्षधर्म (हेतु) वचन है। 'जो कृतक होता है वह अनित्य होता है, यथा घटादि' इस प्रकारका वचन सपक्षानुगम (सपक्षसत्त्व) वचन है। 'जो नित्य होता है वह अकृतक देखा गया है, यथा आकाश' यह व्यतिरेक (विपक्षसत्त्व) वचन है। इस प्रकार हेतुको त्रिरूप प्रतिपादन करके उसके तीनों रूपोंका भी स्पष्टीकरण किया है। वे तीन रूप हैं—१ पक्षधर्मत्व,

१. पक्षधर्मत्वहीनोऽपि गमकः कृत्तिकोदयः।

अन्तर्व्याप्तिरतः सैव गमकत्वप्रसाधनी ॥ —वादीभट्टसिंह, स्या० सि० ४।८३-८४।

२. साध्यनिर्देशः प्रतिज्ञा। —अक्षपाद, न्यायसू० १।१।३३।

३. प्रज्ञापनीयेन धर्मेण धर्मिणो विशिष्टस्य परिग्रहवचनं प्रतिज्ञा साध्यनिर्देशः अनित्यः शब्द इति। —वात्स्यायन, न्यायभा० १।१।३३ तथा १।१।३४।

४. अनुमेयोद्देशोऽविरोधी प्रतिज्ञा। प्रतिपिपादयिषितधर्मविशिष्टस्य धर्मिणोऽपदेश-विषयमापादयितुमुद्देशमात्रं प्रतिज्ञा। '....'। —प्रशस्तपाद, वैशि० भाष्य पृष्ठ ११४।

५. यदनुमेयेन सम्बद्धं प्रसिद्धं च तदन्विते।

तदभावे च नास्त्येव तल्लिगमनुमापकम् ॥ —बही, पृष्ठ १००।

६. प्रश० भा०, पृ० १००।

७. पक्षः प्रसिद्धो धर्मी....। हेतुस्त्रिरूपः। किं पुनस्त्रैरूप्यम्? पक्षधर्मत्वं सपक्षे सत्त्वं विपक्षे चासत्त्वमिति।तद्यथा। अनित्यः शब्द इति पक्षवचनम्। कृतकत्वादिति पक्षधर्मवचनम्। यत्कृतकं तदनित्यं दृष्टं तथा घटादिरिति सपक्षानुगमवचनम्। यन्नित्यं तदकृतकं दृष्टं तथाऽऽकाशमिति व्यतिरेकवचनम्। —शंकरस्वामी, न्यायप्र० पृष्ठ १-२।

२ सपक्षसत्त्व, और ३ विपक्षासत्त्व । ध्यान रहे, यहाँ 'पक्षधर्मत्व' पक्षधर्मताके लिए ही आया है । प्रशस्तपादने जिस तथ्यको 'अनुमेयसम्बद्धत्व' शब्दसे प्रकट किया है उसे न्यायप्रवेशकारने 'पक्षधर्मत्व' शब्द द्वारा बतलाया है । तात्पर्य यह कि प्रशस्तपादके मतसे हेतुके तीन रूपोंमें परिगणित प्रथम रूप 'अनुमेय-सम्बद्धत्व' है और न्यायप्रवेशके अनुसार 'पक्षधर्मत्व' । दोनोंमें केवल शब्दभेद है, अर्थभेद नहीं । उत्तरकालमें तो प्रायः सभी भारतीय तार्किकोंके द्वारा तीन रूपों अथवा पाँच रूपोंके अन्तर्गत पक्षधर्मत्वका बोधक पक्ष-धर्मत्व या पक्षधर्मता पद ही अभिप्रेत हुआ है । उद्योतकर^१, वाचस्पति^२, उदयन,^३ गंगेश^४, केशव^५ प्रभृति वैदिक नैयायिकों तथा धर्मकीर्ति^६, धर्मोत्तर^७, अर्चट^८ आदि बौद्ध तार्किकोंने अपने ग्रन्थोंमें उसका प्रतिपादन किया है । पर जैन नैयायिकोंने^९ पक्षधर्मतापर उतना बल नहीं दिया, जितना व्याप्तिपर दिया है । सिद्धसेन^{१०}, अकलंक^{११}, विद्यानन्द^{१२}, वादीभसिंह^{१३} आदिने तो उसे अनावश्यक एवं व्यर्थ भी बतलाया है । उनका मन्तव्य^{१४} है कि 'कल सूर्यका उदय होगा, क्योंकि वह आज उदय हो रहा है, 'कल शनिवार होगा, क्योंकि आज शुक्र-वार है', 'ऊपर देशमें वृष्टि हुई है, क्योंकि अधोदेशमें प्रवाह दृष्टिगोचर हो रहा है', 'अद्वैतवादीको भी प्रमाण इष्ट है, क्योंकि इष्टका साधन और अनिष्टका दूषण अन्यथा नहीं हो सकता' जैसे प्रचुर हेतु पक्ष-धर्मताके अभावमें भी मात्र अन्तर्व्याप्तिके बलपर साध्यके अनुमापक हैं ।

(ख) व्याप्ति :

अनुमानका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और अनिवार्य अंग व्याप्ति है । इसके होनेपर ही साधन साध्यका गमक होता है, उसके अभावमें नहीं । अतएव इसका दूसरा नाम 'अविनाभाव' भी है । देखना है कि इन दोनों शब्दोंका प्रयोग कबसे आरम्भ हुआ है ।

अक्षपादके^{१५} न्यायसूत्र और वात्स्यायनके^{१६} न्यायभाष्यमें न व्याप्ति शब्द उपलब्ध होता है और न अविनाभाव । न्यायभाष्यमें^{१७} मात्र इतना मिलता है कि लिङ्ग और लिङ्गीमें सम्बन्ध होता है अथवा वे सम्बद्ध

१. उद्योतकर, न्यायवा० १।१।३५, पृष्ठ १२९, १३१ ।
२. वाचस्पति, न्यायवा० ता० टी० १।१।१५, पृष्ठ १७१ ।
३. उदयन, किरणा०, पृष्ठ २९०, २९४ ।
४. त० चि० जागदी० टी० पृ० १३, ७१ ।
५. केशव मिश्र, तर्कभा०, अनु० निरू०, पृष्ठ ८८, ८९ ।
- ६-७. धर्मकीर्ति, न्यायवि०, द्वि० परि० पृष्ठ २२ ।
८. अर्चट, हेतुवि० टी०, पृष्ठ २४ ।
९. न्यायवि० १।१७६ ।
१०. सिद्धसेन, न्यायाव० का० २० ।
११. न्यायवि० २।२२१ ।
१२. प्रमाणपरी० पृष्ठ ४९ ।
१३. वादीभसिंह, स्या० सि० ४।८७ ।
१४. अकलंक, लघुय० १।३।१४ ।
१५. न्यायसू० १।१।५, ३४, ३५ ।
१६. न्यायभा० १।१।५, ३४, ३५ ।
१७. लिङ्गलिङ्गिनोः सम्बन्धदर्शनं लिङ्गदर्शनं चाभिसम्बध्यते । लिङ्गलिङ्गिनोः सम्बद्धयोर्दर्शनेन लिङ्गस्मृतिरभि-सम्बध्यते । --न्यायभा० १।१।५ ।

होते हैं। पर वह सम्बन्ध व्याप्ति अथवा अविनाभाव है, इसका वहाँ कोई निर्देश नहीं है। गौतमके हेतु-लक्षणप्रदर्शक सूत्रोंसे^१ भी केवल यही ज्ञात होता है कि हेतु वह है जो उदाहरणके साधर्म्य अथवा वैधर्म्यसे साध्यका साधन करे। तात्पर्य यह कि हेतुको पक्षमें रहनेके अतिरिक्त सपक्षमें विद्यमान और विपक्षसे व्यावृत्त होना चाहिए, इतना ही अर्थ हेतुलक्षणसूत्रसे ध्वनित होता है, हेतुको व्याप्ति (व्याप्तिविशिष्ट या अविनाभावी) भी होना चाहिए, इसका उनसे कोई संकेत नहीं मिलता। उद्योतकरके^२ न्यायवार्तिकमें अविनाभाव और व्याप्ति दोनों शब्द प्राप्त हैं। पर उद्योतकरने उन्हें परमतके रूपमें प्रस्तुत किया है तथा उनकी आलोचना भी की है। इससे प्रतीत होता है कि न्यायवार्तिककारको भी न्यायसूत्रकार और न्यायभाष्यकारकी तरह अविनाभाव और व्याप्ति दोनों अमान्य हैं। उल्लेख्य है कि उद्योतकर अविनाभाव और व्याप्तिकी आलोचना (न्यायवा० १।१।५, पृष्ठ ५४, ५५) कर तो गये। पर स्वकीय सिद्धान्तकी व्यवस्थामें उनका उपयोग उन्होंने असन्दिग्ध रूपमें किया है^३। उनके परवर्ती वाचस्पति मिश्रने^४ अविनाभावको हेतुके पाँच रूपोंमें समाप्त कहकर उसके द्वारा ही समस्त हेतुरूपोंका संग्रह किया है। किन्तु उन्होंने भी अपने कथनको परम्परा-विरोधी समझकर अविनाभावका परित्याग कर दिया है और उद्योतकरके अभिप्रायानुसार पक्षधर्मत्वादि पाँच हेतुरूपोंको ही महत्त्व दिया है, अविनाभावको नहीं। जयन्त भट्टने^५ अविनाभावको स्वीकार करते हुए भी उसे पक्षधर्मत्वादि पाँच रूपोंमें समाप्त बतलाया है।

इस प्रकार वाचस्पति और जयन्त भट्टके द्वारा स्पष्टतया अविनाभाव और व्याप्तिका प्रवेश न्याय-परम्परामें हो गया तो उत्तरवर्ती न्यायग्रन्थकारोंने उन्हें अपना लिया और उनकी व्याख्याएँ आरम्भ कर दीं। यही कारण है कि बौद्ध तार्किकों द्वारा मुख्यतया प्रयुक्त अनन्तरीयक (या नान्तरीयक) तथा प्रतिबन्ध और जैन तर्कग्रन्थकारों द्वारा प्रधानतया प्रयोगमें आने वाले अविनाभाव एवं व्याप्ति जैसे शब्द उद्योतकरके

१. उदाहरणसाधर्म्यात् साध्यसाधनं हेतुः। तथा वैधर्म्यात्। —न्यायसू० १।१।३४, ३५।

२. (क) अविनाभावेन प्रतिपादयतीति चेत्। अथापीदं स्यात् अविनाभावोऽग्निधूमयोरतो धूमदर्शनादग्निं प्रतिपद्यत इति। तन्न। विकल्पानुपपत्तेः। अग्निधूमयोरविनाभाव इति कोऽर्थः? किं कार्यकारणभावः उत्तैकार्थसमवायः तत्सम्बन्धमात्रं वा।....।—उद्योतकर, न्यायवा० १।१।५, पृष्ठ ५०, चौखम्भा, काशी, १९१६ ई०।

(ख) अथोत्तरमवधारणमवगम्यते तस्य व्याप्तिरर्थः तथाप्यनुमेयमवधारितं व्याप्त्या न धर्मो, यत एव करणं ततोऽन्यत्रावधारणमिति। सम्भवव्याप्त्या चानुमेयं नियतं....।—वही, १।१।५, पृष्ठ ५५, ५६।

३. (क) सामान्यतोदृष्टं नाम अकार्यकारणीभूतेन यत्राविनाभाविना विशेषणेन विशेष्यमाणो धर्मो गम्यते तत् सामान्यतोदृष्टं यथा बलाकया सलिलानुमानम्।—न्यायवा० १।१।५, पृ० ४७।

(ख) प्रसिद्धमिति पक्षे व्यापकं, सदिति सजातीयोऽस्ति, असन्दिग्धमिति सजातीयाविनाभावि।—वही, १।१।५, पृष्ठ ४९।

४. यद्यप्यविनाभावः पंचसु चतुर्षु वा रूपेषु लिङ्गस्य समाप्यते इत्यविनाभावेनैव सर्वाणि लिङ्गरूपाणि संगृह्यन्ते, तथापीह प्रसिद्धसच्छब्दाभ्यां द्वयोः संग्रहे गोवलीवर्दन्यायेन तत्परित्यज्य विपक्षव्यतिरेकासत्प्रतिपक्षत्वाबाधितविषयत्वानि संगृह्णीत।—न्यायवा० ता० टी० १।१।५, पृष्ठ १७८, चौखम्भा. १९२५ ई०।

५. एतेषु पंचलक्षणेषु अविनाभावः समाप्यते। —न्यायकलिका पृष्ठ २।

बाद न्यायदर्शनमें समाविष्ट हो गये एवं उन्हें एक-दूसरेका पर्याय माना जाने लगा । जयन्त भट्टने^१ अविनाभावका स्पष्टीकरण करनेके लिए व्याप्ति, नियम, प्रतिबन्ध और साध्याविनाभावित्वको उसीका पर्याय बतलाया है । वाचस्पति मिश्र^२ कहते हैं कि हेतुका कोई भी सम्बन्ध हो उसे स्वाभाविक एवं नियत होना चाहिये और स्वाभाविकका अर्थ वे उपाधिरहित बतलाते हैं । इस प्रकारका हेतु ही गमक होता है और दूसरा सम्बन्धी (साध्य) गम्य । तात्पर्य यह कि उनका अविनाभाव या व्याप्तिशब्दोंपर जोर नहीं है । पर उदयन^३, केशव मिश्र^४, अन्तम्भट्ट^५, विश्वनाथ पञ्चानन^६ प्रभृति नैयायिकोंने व्याप्ति शब्दको अपनाकर उसीका विशेष व्याख्यान किया है तथा पक्षधर्मताके साथ उसे अनुमानका प्रमुख अंग बतलाया है । गंगेश और उनके अनुवर्ती वद्वत्मान उपाध्याय, पञ्चधरमिश्र, वासुदेव मिश्र, रघुनाथ शिरोमणि, मथुरानाथ तर्कवागीश, जगदीश तर्कालंकार, गदाधर भट्टाचार्य आदि नव्य नैयायिकोंने^७ व्याप्तिपर सर्वाधिक चिन्तन और निबन्धन किया है । गङ्गेशने तत्त्वचिन्तामणिमें अनुमानलक्षण^८ प्रस्तुत करके उसके व्याप्ति^९ और पक्षधर्मता^{१०} दोनों अंगोंका नव्यपद्धतिसे विवेचन किया है ।

प्रशस्तपाद-भाष्यमें^{११} भी अविनाभावका प्रयोग उपलब्ध होता है । उन्होंने अविनाभूत लिंगको लिङ्गीका गमक बतलाया है । पर वह उन्हें विलक्षणरूप ही अभिप्रेत है ।^{१२} यही कारण है कि टिप्पणकारने^{१३} अविनाभावका अर्थ 'व्याप्ति' एवं 'अव्यभिचरित सम्बन्ध' दे करके भी शंकरमिश्र द्वारा किये गये अविनाभावके खण्डनसे सहमति प्रकट की है और 'वस्तुतस्त्वनीपाधिकसम्बन्ध एव व्याप्तिः'^{१४} इस उदयनोक्त^{१५} व्याप्तिलक्षणको ही मान्य किया है । इससे प्रतीत होता है कि अविनाभावकी मान्यता वैशेषिकदर्शनकी भी स्वोपज्ञ एवं मौलिक नहीं है ।

-
१. अविनाभावो व्याप्तिनियमः प्रतिबन्धः साध्याविनाभावित्वमित्यर्थः ।—न्यायकलि० पृ० २ ।
 २. तस्माद्यो वा स वाऽस्तु, सम्बन्धः, केवलं यस्यासौ स्वाभाविको नियतः स एव गमको गम्यश्चेतरः सम्बन्धीति युज्यते । तथा हि धूमादीनां वल्ल्यादिसम्बन्धः स्वाभाविकः न तु वल्ल्यादीनां धूमादिभिः ।..... तस्मादुपाधि प्रयत्नेनान्विष्यन्तोऽनुपलभमाना नास्तीत्यवगम्य स्वाभाविकत्वं सम्बन्धस्य निश्चिनुमः ।
—न्यायवा० ता० टी० १।१।५, पृ० १६५ ।
 ३. किरणा० पृ० २९०, २९४, २९५-३०२ ।
 ४. तर्कभा० पृ० ७२, ७८, ८२, ८३, ८८ ।
 ५. तर्कसं० पृ० ५२-५७ ।
 ६. सि० मु० का० ६८, पृ० ५१-५५ ।
 ७. इनके ग्रन्थोद्धरण विस्तारभयसे यहाँ अप्रस्तुत हैं ।
 ८. त० चि० अनु० खण्ड, पृ० १३ ।
 ९. वही, पृ० ७७-८२, ८६-८९, १७१-२०८, २०९-४३२ ।
 १०. वही, अनु० ख० पृ० ६२३-६३१ ।
 - ११-१२. प्र० भा०, पृ० १०३ तथा १०० ।
 १३. वही, दुण्डिराज शास्त्री, टिप्प० पृ० १०३ ।
 १४. प्र० भा० टिप्प० पृ० १०३ ।
 १५. किरणा० पृ० २९७ ।

कुमारिलके मीमांसाश्लोकार्त्तिकमें^१ व्याप्ति और अविनाभाव दोनों शब्द मिलते हैं। पर उनके पूर्व न जैमिनिसूत्रमें वे हैं और न शाबर-भाष्यमें।

बौद्ध तार्किक शंकरस्वामीके न्यायप्रवेशमें^२ भी अविनाभाव और व्याप्ति शब्द नहीं हैं। पर उनके अर्थका बोधक नान्तरीयक (अनन्तरीयक) शब्द पाया जाता है। धर्मकीर्ति^३, धर्मोत्तर^४, अर्चट^५ आदि बौद्ध नैयायिकोंने अवश्य प्रतिबन्ध और नान्तरीयक शब्दोंके साथ इन दोनोंका भी प्रयोग किया है। इनके पश्चात् तो उक्त शब्द बौद्ध तर्कग्रन्थोंमें बहुलतया उपलब्ध हैं।

तब प्रश्न है कि अविनाभाव और व्याप्तिका मूल स्थान क्या है? अनुसन्धान करनेपर ज्ञात होता है कि प्रशस्तपाद और कुमारिलसे पूर्व जैन तार्किक समन्तभद्रने^६, जिनका समय^७ विक्रमकी २२०, ३२० शती माना जाता है, अस्तित्वको नास्तित्वका और नास्तित्वको अस्तित्वका अविनाभावी बतलाते हुए अविनाभावका व्यवहार किया है। एक-दूसरे स्थलपर^८ भी उन्होंने उसे स्पष्ट स्वीकार किया है। और इस प्रकार अविनाभावका निर्देश मान्यताके रूपमें सर्वप्रथम समन्तभद्रने किया जान पड़ता है। प्रशस्तपादकी तरह उन्होंने उसे त्रिलक्षणरूप स्वीकार नहीं किया। उनके पश्चात् तो वह जैन परम्परामें हेतुलक्षणरूपमें ही प्रतिष्ठित हो गया। पूज्यपादने^९, जिनका अस्तित्व-समय इसाकी पाँचवीं शताब्दी है, अविनाभाव और व्याप्ति दोनों शब्दोंका प्रयोग किया है। सिद्धसेन^{१०}, पात्रस्वामी^{११}, कुमारनन्दि^{१२}, अकलंक^{१३}, माणिक्यनन्दि^{१४} आदि जैन तर्कग्रंथकारोंने अविनाभाव, व्याप्ति और अन्यथानुपपत्ति या अन्यथानुपपन्नत्व तीनोंका व्यवहार पर्याय-शब्दोंके रूपमें किया है। जो (साधन) जिस (साध्य)के बिना उपपन्न न हो उसे अन्यथानुपपन्न कहा गया है।^{१५} असम्भव नहीं कि शाबरभाष्यगत^{१६} अर्थापत्त्युत्थापक अन्यथानुपपद्यमान और प्रभाकरकी बृहतीमें^{१७} उसके लिए प्रयुक्त अन्यथानुपपत्ति शब्द अर्थापत्ति और अनुमानको अभिन्न मानने वाले जैन तार्किकोंसे अप-

१. मी० श्लोक अनु० खं० श्लो० ४, १२, ४३ तथा १६१।

२. न्या० प्र० पृ० ४, ५।

३. प्रमाणवा० १:३, १:३२ तथा न्यायवि० पृ० ३०, ९३। हेतुवि० पृ० ५४।

४. न्यायवि० टी० पृ० ३०।

५. हेतुवि० टी० पृ० ७, ८, १०, ११ आदि।

६. श्री जुगलकिशोर मुख्तार, स्वामी समन्तभद्र पृ० १६६।

७. अस्तित्वं प्रतिषेध्येनाविनाभाव्येकधर्मिणि। नास्तित्वं प्रतिषेध्येनाविनाभाव्येकधर्मिणि।

—आप्तमी० का० १७, १८।

८. धर्मधर्म्यविनाभावः सिद्धयत्यन्योन्यवीक्षया।—वही, का० ७५।

९. स० सि० ५।१८, १०।४।

१०. न्यायाव० १३, १८, २०, २२।

११. तत्त्वसं० पृ० ४०६ पर उद्धृत 'अन्यथानुपपन्नत्व' आदि कारि०।

१२. प्र० पृ० पृ० ४९ में उद्धृत 'अन्यथानुपपत्त्येक श्रृङ्ग' आदि कारि०।

१३. न्या० वि० २।१८७, ३२३, ३२७, ३२९।

१४. परी० मु० ३।११, १५, १६, ९४, ९५, ९६।

१५. साधनं प्रकृताभावेऽनुपपन्नं—।—न्यायवि० २।६९, तथा प्रमाणसं० २१।

१६. अर्थापत्तिरपि दृष्टः श्रुतो वार्थोऽन्यथा नोपपद्यते इत्यर्थकल्पना।—शाबरभा० १।१।५, बृहती पृ० ११०।

१७. केयमन्यथानुपपत्तिर्नाम?—न हि अन्यथानुपपत्तिः प्रत्यक्षसमधिगम्या।—बृहती पृ० ११०, १११।

नाये गये हों, क्योंकि ये शब्द जैन न्यायग्रंथोंमें अधिक प्रचलित एवं प्रयुक्त मिलते हैं और शान्तरक्षित^१ आदि प्राचीन तार्किकोंने उन्हें पात्रस्वामीका मत कह कर उद्धृत तथा समालोचित किया है। अतः उनका उद्गम जैन तर्कग्रंथोंसे बहुत कुछ सम्भव है।

प्रस्तुत अनुशीलनसे हम इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि न्याय, वैशेषिक और बौद्ध दर्शनोंमें आरम्भ में पक्षधर्मता (सपक्षसत्त्व और विपक्षव्यावृत्ति सहित) को तथा मध्यकाल और नव्ययुगमें पक्षधर्मता और व्याप्ति दोनोंको अनुमानका आधार माना गया है। पर जैन तार्किकोंने आरम्भसे अन्त तक पक्षधर्मता (अन्य दोनों रूपों सहित) को अनावश्यक तथा एकमात्र व्याप्ति (अविनाभाव, अन्यथानुपपन्नत्व) को अनुमानका अपरिहार्य अंग बतलाया है।

अनुमान-भेद

प्रश्न है कि यह अनुमान कितने प्रकारका माना गया है? अध्ययन करने पर प्रतीत होता है कि सर्व प्रथम कणादने^२ अनुमानके प्रकारोंका निर्देश किया है। उन्होंने उसको कण्ठतः संख्याका तो उल्लेख नहीं किया, किन्तु उसके प्रकारोंको गिनाया है। उनके परिगणित प्रकार निम्न हैं—(१) कार्य, (२) कारण, (३) संयोगी, (४) विरोधि और (५) समवायि। यतः हेतुके पाँच भेद हैं, अतः उनसे उत्पन्न अनुमान भी पाँच हैं।

न्यायसूत्र^३, उपायहृदय^४, चरक^५ 'सांख्यकारिका'^६ और अनुयोगद्वारसूत्रमें^७ अनुमानके पूर्वोल्लिखित पूर्ववत् आदि तीन भेद बताये हैं। विशेष यह कि चरकमें त्रित्वसंख्याका उल्लेख है, उनके नाम नहीं दिये। सांख्यकारिकामें भी त्रिविधत्वका निर्देश है और केवल तीसरे सामान्यतोदृष्टका नाम है।^८ किन्तु माठर^९ तथा युक्तिदीपिकाकार^{१०} ने तीनोंके नाम दिये हैं और वे उपर्युक्त ही हैं। अनुयोगद्वारमें प्रथम दो भेद तो वही हैं, पर तीसरेका नाम सामान्यतोदृष्ट न होकर दृष्टसाधर्म्यवत् नाम है।

इस विवेचनसे ज्ञात होता है कि तार्किकोंने उस प्राचीन कालमें कणादकी पंचविध अनुमान-परम्पराको नहीं अपनाया, किन्तु पूर्ववदादि त्रिविध अनुमानकी परम्पराको स्वीकार किया है। इस परम्पराका मूल क्या है? न्यायसूत्र है या अनुयोगसूत्र आदिमेंसे कोई एक? इस सम्बन्धमें निर्णयपूर्वक कहना कठिन है। पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उस समय पूर्वागत त्रिविध अनुमानकी कोई सामान्य परम्परा रही है जो अनुमान-चर्चामें वर्तमान थी और जिसके स्वीकारमें किसीको सम्भवतः विवाद नहीं था।

पर उत्तरकालमें यह त्रिविध अनुमान-परम्परा भी सर्वमान्य नहीं रह सकी। प्रशस्तपादने^{११} दो तरहसे

१. तत्त्वसं० पृ० ४०५-४०८।
२. वैशे० सू० १।२।१।
३. न्यायसू० १।१।५।
४. उपायहृ० पृ० १३।
५. चरकसूत्रस्थान ११।२१, २२।
६. सां० का०, का० ५।
७. मुनि कन्हैयालाल, अनुयो० सू० पृ० ५३९।
८. सां० का०, का० ६।
९. माठरवृ०, का० ५।
१०. युक्तिदी०, का० ५, पृ० ४३, ४४।
११. प्रश० भा०, पृ० १०४, १०६, ११३।

अनुमान-भेद बतलाये हैं—१ दृष्ट और २ सामान्यतोदृष्ट । अथवा १. स्वनिश्चितार्थानुमान और परार्थानुमान । मीमांसादर्शनमें शाबरने^१ प्रशस्तपादके प्रथमोक्त अनुमानद्वैविध्यको ही कुछ परिवर्तनके साथ स्वीकार किया है—१ प्रत्यक्षतोदृष्टसम्बन्ध और २ सामान्यतोदृष्टसम्बन्ध । सांख्यदर्शनमें वाचस्पतिके^२ अनुसार वीत और अवीत ये दो भेद भी मान लिये हैं । वीतानुमानको उन्होंने पूर्ववत् और सामान्यतोदृष्ट द्विविधरूप और अवीतानुमानको शेषवत् रूप मानकर उक्त अनुमानत्रैविध्यके साथ समन्वय भी किया है । ध्यातव्य है कि सांख्योकी सप्तविध अनुमान-मान्यताका भी उल्लेख उद्योतकर^३, वाचस्पति^४ और प्रभाचन्द्रने^५ किया है । पर वह हमें सांख्यदर्शनके उपलब्ध ग्रन्थोंमें प्राप्त नहीं हो सकी । प्रभाचन्द्रने तो प्रत्येकका स्वरूप और उदाहरण देकर उन्हें स्पष्ट भी किया है ।

आगे चलकर जो सर्वाधिक अनुमानभेद-परम्परा प्रतिष्ठित हुई वह है प्रशस्तपादकी उक्त—१ स्वार्थ और २ परार्थभेदवाली परम्परा । उद्योतकरने^६ पूर्ववदादि अनुमावत्रैविध्यकी तरह केवलान्वयी, केवलव्यतिरेकी और अन्वयव्यतिरेकी इन तीन नये अनुमानभेदोंका भी प्रदर्शन किया है । किन्तु उन्होंने और उनके उत्तरवर्ती वाचस्पति तकके नैयायिकोंने प्रशस्तपादनिर्दिष्ट उक्त स्वार्थ-परार्थके अनुमानद्वैविध्यको अंगीकार नहीं किया । पर जयन्तभट्ट^७ और उनके पश्चात्पूर्वी केशव मिश्र^८ आदिने उक्त अनुमानद्वैविध्यको मान लिया है ।

बौद्ध दर्शनमें दिङ्नागसे पूर्व उक्त द्वैविध्यको परम्परा नहीं देखी जाती । परन्तु दिङ्नागने^९ उसका प्रतिपादन किया है । उनके पश्चात् तो धर्मकीर्ति^{१०} आदिने इसीका निरूपण एवं विशेष व्याख्यान किया है ।

जैन तार्किकोंने^{११} इसी स्वार्थ-परार्थ अनुमानद्वैविध्यको अंगीकार किया है और अनुयोगद्वारादिपतिपादित अनुमानत्रैविध्यको स्थान नहीं दिया, प्रत्युत उसकी समीक्षा की है ।^{१२}

इस प्रकार अनुमान-भेदोंके विषयमें भारतीय तार्किकोंकी विभिन्न मान्यताएँ तर्कग्रन्थोंमें उपलब्ध होती हैं । तथ्य यह कि कणाद जहाँ साधनभेदसे अनुमानभेदका निरूपण करते हैं वहाँ न्यायसूत्र आदिमें

१. शाबरभा० १।१।५, पृष्ठ ३६ ।
२. सां० त० कौ० का० ५, पृ० ३०-३२ ।
३. न्यायवा० १।१।५, पृष्ठ ५७ ।
४. न्यायवा० ता० टी० १।१।५, पृष्ठ १६५ ।
५. न्यायकु० च० ३।१४, पृष्ठ ४६२ ।
६. न्यायवा० १।१।५, पृष्ठ ४६ ।
७. न्यायमं पृष्ठ १३०, १३१ ।
८. तर्कभा० पृ० ७९ ।
९. प्रमाणसमु० २।१ ।
१०. न्यायवि० पृ० २१, द्वि० परि० ।
११. सिद्धसेन, न्यायाव० का० १० । अकलंक, सि० वि० ६।२, पृष्ठ ३७३, । विद्यानन्द, प्र० प० पृ० ५८ । माणिक्यनन्दि, परी० सु० ३।५२, ५३ । देवसूरि, प्र० न० त० ३।९, १०, । हेमचन्द्र, प्रमाणमी० १।२।८, पृष्ठ ३९ आदि ।
१२. अकलंक, न्यायविनि० ३४१, ३४२, । स्याद्वादर० पृष्ठ ५२७ । आदि ।

विषयभेद तथा प्रशस्तपादभाष्य आदिमें प्रतिपत्ताभेदसे अनुमान-भेदका प्रतिपादन ज्ञात होता है। साधन अनेक हो सकते हैं, जैसा कि प्रशस्तपादने^१ कहा है, अतः अनुमानके भेदोंकी संख्या पाँचसे अधिक भी हो सकती है। न्यायसूत्रकार आदिकी दृष्टिमें चूँकि अनुमेय या तो कार्य होगा, या कारण या अकार्यकारण। अतः अनुमेयके त्रैविध्यसे अनुमान त्रिविध है। प्रशस्तपाद द्विविध प्रतिपत्ताओंकी द्विविध प्रतिपत्तियोंकी दृष्टिसे अनुमानके स्वार्थ और परार्थ दो ही भेद मानते हैं जो बुद्धिको लगता है, क्योंकि अनुमान एक प्रकारकी प्रतिपत्ति है और वह स्व तथा पर दोके द्वारा की जाती है। सम्भवतः इसीसे उत्तरकालमें अनुमानका स्वार्थ-परार्थद्वैविध्य सर्वाधिक प्रतिष्ठित और लोकप्रिय हुआ।

अनुमानावयव :

अनुमानके तीन उपादान हैं,^२ जिनसे वह निष्पन्न होता है—१. साधन, २. साध्य और ३. धर्मी। अथवा^३ १. पक्ष और २. हेतु ये दो उसके अंग हैं, क्योंकि साध्यधर्म विशिष्ट धर्मोंको पक्ष कहा गया है। अतः पक्षको कहनेसे धर्म और धर्मी दोनोंका ग्रहण हो जाता है। साधन गमकरूपसे उपादान है, साध्य गम्यरूपसे और धर्मी साध्यधर्मके आधाररूपसे, क्योंकि किसी आधार-विशेषमें साध्यकी सिद्धि करना अनुमानका प्रयोजन है। सच यह है कि केवल धर्मकी सिद्धि करना अनुमानका ध्येय नहीं है, क्योंकि वह व्याप्ति-निश्चयकालमें ही अवगत हो जाता है और न केवल धर्मीकी सिद्धि अनुमानके लिये अपेक्षित है, क्योंकि वह सिद्ध रहता है। किन्तु 'पर्वत अग्निवाला है' इस प्रकार पर्वतमें रहने वाली अग्निका ज्ञान करना अनुमानका लक्ष्य है। अतः धर्मी भी साध्यधर्मके आधाररूपसे अनुमानका अंग है। इस तरह साधन, साध्य और धर्मी ये तीन अथवा पक्ष और हेतु ये दो स्वार्थानुमान तथा परार्थानुमान दोनोंके अंग हैं। कुछ अनुमान ऐसे भी होते हैं जहाँ धर्मी नहीं होता। जैसे—सोमवारसे मंगलवारका अनुमान आदि। ऐसे अनुमानोंमें साधन और साध्य दो ही अंग हैं।

उपर्युक्त अंग स्वार्थानुमान और ज्ञानात्मक परार्थानुमानके कहे गये हैं। किन्तु वचनप्रयोग द्वारा प्रतिवादियों या प्रतिपाद्योंको अभिधेय-प्रतिपत्ति कराना जब अभिप्रेत होता है तब वह वचनप्रयोग परार्थानुमान-वाक्यके नामसे अभिहित होता है और उसके निष्पादक अंगोंको अवयव कहा गया है। परार्थानुमान-वाक्यके कितने अवयव होने चाहिए, इस सम्बन्धमें तार्किकोंके विभिन्न मत हैं। न्यायसूत्रकार^४ का मत है कि परार्थानुमान वाक्यके पाँच अवयव हैं—१. प्रतिज्ञा २. हेतु, ३. उदाहरण, ४. उपनय और ५. निगमन। भाष्यकारने^५ सूत्रकारके इस मतका न केवल समर्थन ही किया है, अपितु अपने कालमें प्रचलित दशावयव-मान्यताका निरास भी किया है। वे दशावयव हैं—उक्त ५ तथा ६. जिज्ञासा, ७. संशय, ८. शक्यप्राप्ति, ९. प्रयोजन और १०. संशयव्युदास।

यहाँ प्रश्न है कि ये दश अवयव किनके द्वारा माने गये हैं? भाष्यकारने उन्हें 'दशावयवानेके नैयायिका वाक्ये संक्षते^६' शब्दों द्वारा 'किन्हीं नैयायिकों' की मान्यता बतलाई है। पर मूल प्रश्न असमाधेय ही रहता है।

हमारा अनुमान है कि भाष्यकारको 'एके नैयायिकाः' पदसे प्राचीन सांख्यविद्वान् युक्तिदीपिकाकार

१. प्रश० भा० पृ० १०४।

२. धर्मभूषण, न्यायदी० तृ० प्रकाश पृ० ७२।

३. वही, पृष्ठ ७२-७३।

४. न्यायसू० १।१।३२। ५-६. न्याभा० १।१।३२, पृष्ठ ४७।

अभिप्रेत हैं, क्योंकि युक्तिदीपिकामें^१ उक्त दशावयवोंका न केवल निर्देश है किन्तु स्वमतरूपमें उनका विशद एवं विस्तृत व्याख्यान भी है। युक्तिदीपिकाकार उन अवयवोंको बतलाते हुए प्रतिपादन करते हैं^२ कि 'जिज्ञासा, संशय, प्रयोजन, शक्यप्राप्ति और संशयव्युदास ये पाँच अवयव व्याख्यांग हैं तथा प्रतिज्ञा, हेतु, दृष्टान्त, उपसंहार और निगमन ये पाँच परप्रतिपादनांग। तात्पर्य यह कि अभिधेयका प्रतिपादन दूसरोंके लिए प्रतिज्ञादि द्वारा होता है और व्याख्या जिज्ञासादि द्वारा। पुनरुक्ति, वैयर्थ्य आदि दोषोंका निरास करते हुए युक्तिदीपिकामें कहा गया है^३ कि विद्वान् सबके अनुग्रहके लिए जिज्ञासादिका अभिधान करते हैं। यतः व्युत्पाद्य अनेक तरहके होते हैं—सन्दिग्ध, विपर्यस्त और अव्युत्पन्न। अतः इन सभीके लिए सन्तोंका प्रयास होता है। दूसरे, यदि प्रतिवादी प्रश्न करे कि क्या जानना चाहते हो ? तो उसके लिए जिज्ञासादि अवयवोंका वचन आवश्यक है। किन्तु प्रश्न न करे तो उसके लिए वे नहीं भी कहे जाएँ। अन्तमें निष्कर्ष निकालते हुए युक्तिदीपिकाकार^४ कहते हैं कि इसीसे हमने जो वीतानुमानके दशावयव कहे वे सर्वथा उचित हैं। आचार्य^५ (ईश्वरकृष्ण) उनके प्रयोगको न्याय-संगत मानते हैं।^६ इससे अवगत होता है कि दशावयवकी मान्यता युक्ति-दीपिकाकारकी रही है। यह भी सम्भव है कि ईश्वरकृष्ण या उनसे पूर्व किसी सांख्य विद्वान्ने दशावयवोंको माना हो और युक्तिदीपिकाकारने उनका समर्थन किया हो।

जैन विद्वान् भद्रबाहुने^७ भी दशावयवोंका उल्लेख किया है। जैसा कि पूर्वमें लिखा गया है। किन्तु उनके वे दशावयव उपर्युक्त दशावयवोंसे कुछ भिन्न हैं।

प्रशस्तपादने^८ पाँच अवयव माने हैं। पर उनके अवयवनामों और न्यायसूत्रकारके अवयवनामोंमें कुछ अन्तर है। प्रतिज्ञाके स्थानमें तो प्रतिज्ञा नाम ही है। किन्तु हेतुके लिए अपदेश, दृष्टान्तके लिए निदर्शन, उपनयके स्थानमें अनुसन्धान और निगमनकी जगह प्रत्याम्नाय नाम दिये हैं। यहाँ प्रशस्तपादकी^९ एक विशेषता उल्लेखनीय है। न्यायसूत्रकारने जहाँ प्रतिज्ञाका लक्षण 'साध्यनिर्देशः प्रतिज्ञा' यह किया है कि वहाँ प्रशस्तपादने 'अनुमेयोद्देशोऽविरोधी प्रतिज्ञा' यह कहकर उसमें 'अविरोधी' पदके द्वारा प्रत्यक्ष-विरुद्ध आदि

१-२. तस्य पुनरवयवाः—जिज्ञासा-संशय-प्रयोजन-शक्यप्राप्ति-संशयव्युदासलक्षणाश्च व्याख्यांगम् प्रतिज्ञा-हेतु-दृष्टान्तोपसंहार-निगमनानि परप्रतिपादनांगमिति । —युक्तिदी० का० ६, पृष्ठ ४७।

३. अत्र ब्रूमः—न, उक्तत्वात् । उक्तमेतत् पुरस्तात् व्याख्यांगं जिज्ञासादयः । सर्वस्य चानुग्रहः कर्तव्य इत्येवमर्थं च शास्त्रव्याख्यां विपश्चिद्भिः प्रत्याय्यते, न स्वार्थं शश्वदज्ञबुद्धयर्थं वा —वही, का० ६, पृष्ठ ४९।

४. 'तस्मात् सूक्तं दशावयवो वीतः । तस्य पुरस्तात् प्रयोगं न्याय्यमाचार्या मन्यन्ते ।' —यु० दी० का० ६, पृष्ठ ५१।

अवयवाः पुनर्जिज्ञासादयः प्रतिज्ञादयश्च । तत्र जिज्ञासादयो व्याख्यांगम् प्रतिज्ञादयः परप्रत्यायनांगम् । तानुत्तरत्र वक्ष्यामः । —वही० का० १ की भूमिका पृष्ठ ३।

५. युक्तिदीपिकाकारने इसी बातको आचार्य (ईश्वरकृष्ण) की कारिकाओं—१, १५, १६, ३५ और ५७ के प्रतीकों द्वारा समर्थित किया है । —यु. दी. का० १ की भूमिका पृष्ठ ३।

६. दशवै० नि० गा० ४९-१३७।

७. अवयवाः पुनः प्रतिज्ञापदेशनिदर्शनानुसन्धानप्रत्याम्नायाः । —प्रश० भा० पृ० ११४।

८. वही, पृ० ११४, ११५।

पाँच विरुद्धसाध्यों (साध्याभासों) का भी निरास किया है। न्यायप्रवेशकारने^१ भी प्रशस्तपादका अनुसरण करते हुए स्वकीय पक्षलक्षणमें 'अविरोधी' जैसा ही 'प्रत्यक्षाद्यविरुद्ध' विशेषण दिया है और उसके द्वारा प्रत्यक्षविरुद्धादि साध्याभासोंका परिहार किया है।

न्यायप्रवेश^२ और माठरवृत्तिमें^३ पक्ष, हेतु और दृष्टान्त ये तीन अवयव स्वीकार किये हैं। धर्मकीर्तिने^४ उक्त तीन अवयवोंमेंसे पक्षको निकाल दिया है और हेतु तथा दृष्टान्त ये दो अवयव माने हैं। न्यायबिन्दु और प्रमाणवार्तिकमें उन्होंने केवल हेतुको ही अनुमानावयव माना है।^५

मीमांसक विद्वान् शालिकानाथने^६ प्रकरणपंचिकामें, नारायण भट्टने^७ मानमेयोदयमें और पार्थसारथिने^८ न्यायरत्नाकरमें प्रतिज्ञा, हेतु और दृष्टान्त इन तीन अवयवोंके प्रयोगको प्रतिपादित किया है।

जैन तार्किक समन्तभद्रका संकेत तत्त्वार्थसूत्रकारके अभिप्रायानुसार पक्ष, हेतु और दृष्टान्त इन तीन अवयवोंको माननेका ओर प्रतीत होता है। उन्होंने आप्तमीमांसा (का० ६, १७, १८, २७ आदि) में उक्त तीन अवयवोंसे साध्य-सिद्धि प्रस्तुत की है। सिद्धसेनने^९ भी उक्त तीन अवयवोंका प्रतिपादन किया है। पर अकलंक^{१०} और उनके अनुवर्ती विद्यानन्द^{११}, माणिक्यनन्दि^{१२}, देवसूरि^{१३}, हेमचन्द्र^{१४}, धर्मभूषण^{१५}, यशोविजय^{१६} आदिने पक्ष और हेतु ये दो ही अवयव स्वीकार किये हैं और दृष्टान्तादि अन्य अवयवोंका निरास किया है। देवसूरिने^{१७} अत्यन्त व्युत्पन्नकी अपेक्षा मात्र हेतुके प्रयोगको भी मान्य किया है। पर साथ ही वे यह भी बतलाते हैं कि बहुलतासे एकमात्र हेतुका प्रयोग न होनेसे उसे सूत्रमें ग्रथित नहीं किया। स्मरण रहे कि जैन न्यायमें उक्त दो अवयवोंका प्रयोग व्युत्पन्न प्रतिपाद्यकी दृष्टिसे अभिहित है। किन्तु अव्युत्पन्न प्रतिपाद्योंकी

१. न्यायप्र० पृ० १।
२. वही, पृ० १, २।
३. माठरवृ० का० ५।
४. वादन्या० पृ० ६१। प्रमाणवा० १।१२८। न्यायबि० पृ० ९१।
५. प्रमाणवा० १, १२८। न्यायबि० पृष्ठ ९१।
६. प्र० पं० पृ० २२०।
७. मा० मे० पृ० ६४।
८. न्यायरत्ना० पृष्ठ ३६१ (मी० श्लोक० अनु० परि० श्लोक ५३)
९. न्यायाव० १३-१९।
१०. न्या० वि०, का० ३८१।
११. पत्रपरी०, पृ० १८।
१२. परीक्षामु० ३।३७।
१३. प्र० न० त० ३। २८, २३।
१४. प्र० मी० २।१।९।
१५. न्याय० दी० पृष्ठ ७६।
१६. जैनत० पृ० १६।
१७. प्र० न० त० ३।२३, पृ० ५४८।

अपेक्षासे तो दृष्टान्तादि अन्य अवयवोंका भी प्रयोग स्वीकृत है।^१ देवसूरि^२, हेमचन्द्र^३ और यशोविजयने^४ भद्रबाहुकथित पक्षादि पाँच शुद्धियोंके भी वाक्यमें समावेशका कथन किया और भद्रबाहुके दशावयवोंका समर्थन किया है।

अनुमान-दोष :

अनुमान-निरूपणके सन्दर्भमें भारतीय तार्किकोंने अनुमानके सम्भव दोषोंपर भी विचार किया है। यह विचार इसलिए आवश्यक रहा है कि उससे यह जानना शक्य है कि प्रयुक्त अनुमान सदोष है या निर्दोष ? क्योंकि जब तक किसी ज्ञानके प्रामाण्य या अप्रामाण्यका निश्चय नहीं होता तब तक वह ज्ञान अभिप्रेत अर्थकी सिद्धि या असिद्धि नहीं कर सकता। इसीसे यह कहा गया है^५ कि प्रमाणसे अर्थसंसिद्धि होती है और प्रमाणाभाससे नहीं। और यह प्रकट है कि प्रामाण्यका कारण गुण हैं और अप्रामाण्यका कारण दोष। अतएव अनुमानप्रामाण्यके हेतु उसकी निर्दोषताका पता लगाना बहुत आवश्यक है। यही कारण है कि तर्कग्रन्थोंमें प्रमाण-निरूपणके परिप्रेक्ष्यमें प्रमाणाभास-निरूपण भी पाया जाता है। न्यायसूत्रमें^६ प्रमाणपरीक्षा प्रकरणमें अनुमानकी परीक्षा करते हुए उसमें दोषाशंका और उसका निरास किया गया है। वात्स्यायनने^७ अनुमान (अनुमानाभास) को अनुमान समझनेकी चर्चा द्वारा स्पष्ट बतलाया है कि दूषितानुमान भी सम्भव है।

अब देखना है कि अनुमानमें क्या दोष हो सकते हैं और वे कितने प्रकारके सम्भव हैं ? स्पष्ट है कि अनुमानका गठन मुख्यतया दो अङ्गों पर निर्भर है—१ साधन और २ साध्य (पक्ष)। अतएव दोष भी साधनगत और साध्यगत दो ही प्रकारके हो सकते हैं और उन्हें क्रमशः साधनाभास तथा साध्याभास (पक्षाभास) नाम दिया जा सकता है। साधन अनुमान-प्रासादका वह प्रधान एवं महत्वपूर्ण स्तम्भ है जिसपर उसका भव्य भवन निर्मित होता है। यदि प्रधान स्तम्भ निर्बल हो तो प्रासाद किसी भी क्षण क्षतिग्रस्त एवं धराशायी हो सकता है। सम्भवतः इसीसे गौतमने^८ साध्यगत दोषोंका विचार न कर मात्र साधनगत दोषोंका विचार किया और उन्हें अवयवोंकी तरह सोलह पदार्थोंके अन्तर्गत स्वतन्त्र पदार्थका स्थान प्रदान किया है। इससे गौतमकी दृष्टिमें उनकी अनुमानमें प्रमुख प्रतिबन्धकता प्रकट होती है। उन्होंने^९ उन साधनगत दोषोंको, जिन्हें हेत्वाभासके नामसे उल्लिखित किया गया है, पाँच बतलाया है। वे हैं—१. सव्यभिचार, २. विरुद्ध, ३. प्रकरणसम, ४. साध्यसम और ५. कालातीत। हेत्वाभासोंकी पाँच संख्या सम्भवतः हेतुके पाँच रूपोंके अभावपर आधारित जान पड़ती है। यद्यपि हेतुके पाँच रूपोंका निर्देश न्यायसूत्रमें उपलब्ध नहीं है। पर उसके व्याख्याकार उद्योतकर प्रभृतिने उनका उल्लेख किया है। उद्योतकरने^{१०}

१. परी० मु० ३।४६। प्र० न० त० ३।४२। प्र० मी० २।१।१०।
२. प्र० न० त० ३।४२, पृ० ५६५।
३. प्र० मी० २।१।१०, पृष्ठ ५२।
४. जैनत० भा० पृष्ठ १६।
५. प्रमाणादर्थसंसिद्धिस्तदाभासाद्विपर्ययः।—माणिक्यनन्दि, परी० मु०, प्रतिज्ञाश्लो० १।
६. न्यायसू० २।१।३८, ३९।
७. न्यायभा० २।१।३९।
८. न्यायसू० १।२।४-९।
९. सव्यभिचारविरुद्धप्रकरणसमसाध्यसमकालातीता हेत्वाभासाः।—न्यायसू० १।२।४।
१०. समस्तलक्षणोपपत्तिरसमस्तलक्षणोपपत्तिश्च।—न्यायवा० १।२।४, पृष्ठ १६३।

हेतुका प्रयोजक समस्तरूपसम्पत्तिको और हेत्वाभासका प्रयोजक असमस्तरूपसम्पत्तिको बतलाकर उन रूपोंका संकेत किया है। वाचस्पतिने^१ उनकी स्पष्ट परिगणना भी कर दी है : वे पाँच रूप हैं—पक्षधर्मत्व, सपक्ष-सत्त्व, विपक्षसत्त्व, अबाधितविषयत्व और असत्प्रतिपक्षत्व। इनके अभावसे हेत्वाभास पाँच ही सम्भव हैं। जयन्तभट्टने^२ तो स्पष्ट लिखा है कि एक-एक रूपके अभावमें पाँच हेत्वाभास होते हैं। न्यायसूत्रकारने एक-एक पृथक् सूत्र द्वारा उनका निरूपण किया है। वात्स्यायनने^३ हेत्वाभासका स्वरूप देते हुए लिखा है कि जो हेतुलक्षण (पंचरूप) रहित है परन्तु कतिपय रूपोंके रहनेके कारण हेतु-सादृश्यसे हेतुकी तरह आभासित होते हैं उन्हें अहेतु अर्थात् हेत्वाभास कहा गया है। सर्वदेवने^४ भी हेत्वाभासका यही लक्षण दिया है।

कणादने^५ असिद्ध, विरुद्ध और सन्दिग्ध ये तीन हेत्वाभास प्रतिपादित किये हैं। उनके भाष्यकार प्रशस्तपादने^६ उनका समर्थन किया है। विशेष यह है कि उन्होंने^७ काश्यपकी दो कारिकाएँ उद्धृत करके पहली द्वारा हेतुको त्रिरूप और दूसरी द्वारा उन तीन रूपोंके अभावसे निष्पन्न होनेवाले उक्त विरुद्ध, असिद्ध और सन्दिग्ध तीन हेत्वाभासोंको बताया है। प्रशस्तपादका^८ एक वैशिष्ट्य और उल्लेख्य है। उन्होंने निदर्शनके निरूपण-सन्दर्भमें बारह निदर्शनाभासोंका भी प्रतिपादन किया है, जबकि न्यायसूत्र और न्यायभाष्यमें उनका कोई निर्देश प्राप्त नहीं है। पाँच प्रतिज्ञाभासों (पक्षाभासों) का भी कथन प्रशस्तपादने^९ किया है, जो बिल्कुल नया है। सम्भव है न्यायसूत्रमें हेत्वाभासोंके अन्तर्गत जिस कालातीत (बाधितविषय-कालात्ययापदिष्ट) का निर्देश है उसके द्वारा इन प्रतिज्ञाभासोंका संग्रह न्यायसूत्रकारको अभीष्ट हो। सर्व-देवने^{१०} छह हेत्वाभास बताये हैं।

उपायहृदयमें^{११} आठ हेत्वाभासोंका निरूपण है। इनमें चार (कालातीत, प्रकरणसम, स्व्यभिचार और विरुद्ध) हेत्वाभास न्यायसूत्र जैसे ही हैं तथा शेष चार (वाक्छल, सामान्यछल, संशयसम और वर्ण्य-सम) नये हैं। इनके अतिरिक्त इसमें अन्य दोषोंका प्रतिपादन नहीं है। पर न्यायप्रवेशमें^{१२} पक्षाभास, हेत्वाभास और दृष्टान्ताभास इन तीन प्रकारके अनुमान-दोषोंका कथन है। पक्षाभासके नौ^{१३}, हेत्वाभासके^{१४} तीन, दृष्टान्ताभासके^{१५} दश भेदोंका सोदाहरण निरूपण है। विशेष यह कि अनैकान्तिक हेत्वाभासके छह भेदोंमें

१. न्यायवा० ता० टी० १।२।४, पृष्ठ ३३०।
२. हेतोः पंचलक्षणानि पक्षधर्मत्वादीनि उक्तानि। तेषामकैकापाये पंच हेत्वाभासा भवन्ति असिद्ध-विरुद्ध-अनैकान्तिक-कालात्ययापदिष्ट-प्रकरणसमाः।—न्यायकलिका पृ० १४। न्यायमं० पृ० १०१।
३. हेतुलक्षणाभावादहेतवो हेतुसामान्याद्धेतुवदाभासमानाः।—न्यायभा० १।२।४ की उत्थानिका, पृ० ६३।
४. प्रमाणमं० पृष्ठ ९।
५. वै० सू० ३।१।१५।
६. प्रश० भा० पृ० १००-१०१।
७. प्रश० भा० पृ० १००।
८. प्र० भा०, पृ० १२२, १२३।
९. वही, पृ० ११५।
१०. प्रमाणमं० पृष्ठ ९।
११. उ० ह० पृ० १४।
१२. एषां पक्षहेतुदृष्टान्ताभासानां वचनानि साधनाभासम्।—न्या० प्र०, पृ० २-७।
- १३, १४, १५. वही, २, ३-७।

एक विरुद्धाव्यभिचारीका^१ भी कथन उपलब्ध होता है, जो तार्किकों द्वारा अधिक चर्चित एवं समालोचित हुआ है। न्यायप्रवेशकारने^२ दश दृष्टान्ताभासोंके अन्तर्गत उभयासिद्ध दृष्टान्ताभासको द्विविध वर्णित किया है और जिससे प्रशस्तपाद जैसी ही उनके दृष्टान्ताभासोंकी संख्या द्वादश हो जाती है। पर प्रशस्तपादोक्त द्विविध आश्रयासिद्ध उन्हें अभीष्ट नहीं है।

कुमारिल^३ और उनके व्याख्याकार पार्थसारथिने^४ मीमांसक दृष्टिसे छह प्रतिज्ञाभासों, तीन हेत्वाभासों और दृष्टान्तदोषोंका प्रतिपादन किया है। प्रतिज्ञाभासोंमें प्रत्यक्षविरोध, अनुमानविरोध और शब्द-विरोध ये तीन प्रायः प्रशस्तपाद तथा न्यायप्रवेशकारकी तरह ही हैं। हाँ, शब्दविरोधके प्रतिज्ञातविरोध, लोक-प्रसिद्धिबिरोध और पूर्वसंज्ञत्वविरोध ये तीन भेद किये हैं। तथा अर्थापत्तिविरोध, उपमानविरोध और अभावविरोध ये तीन भेद सर्वथा नये हैं, जो उनके मतानुरूप हैं। विशेष^५ यह कि इन विरोधोंको धर्म, धर्मी और उभयके सामान्य तथा विशेष स्वरूपगत बतलाया गया है। त्रिविध हेत्वाभासोंके अवान्तर भेदोंका भी प्रदर्शन किया है और न्यायप्रवेशकी भाँति कुमारिलने^६ विरुद्धाव्यभिचारी भी माना है।

सांख्यदर्शनमें युक्तिदीपिका आदिमें तो अनुमानदोषोंका प्रतिपादन नहीं मिलता। किन्तु माठरने^७ असिद्धादि चउदह हेत्वाभासों तथा साध्यविकलादि दश साधर्म्य-वैधर्म्य निदर्शनाभासोंका निरूपण किया है। निदर्शनाभासोंका प्रतिपादन उन्होंने प्रशस्तपादके अनुसार किया है। अन्तर इतना ही है कि माठरने प्रशस्तपादके बारह निदर्शनाभासोंमें दशको स्वीकार किया है और आश्रयासिद्ध नामक दो साधर्म्य-वैधर्म्य निदर्शनाभासोंको छोड़ दिया है। पक्षाभास भी उन्होंने नौ निर्दिष्ट किये हैं।

जैन परम्पराके उपलब्ध न्यायग्रन्थोंमें सर्वप्रथम न्यायावतारमें अनुमान-दोषोंका स्पष्ट कथन प्राप्त होता है। इसमें पक्षादि तीनके वचनको परार्थानुमान कहकर उसके दोष भी तीन प्रकारके बतलाए हैं^८— १. पक्षाभास, २. हेत्वाभास और ३. दृष्टान्ताभास। पक्षाभासके सिद्ध और बाधित ये दो भेद दिखाकर बाधितके प्रत्यक्षबाधित, अनुमानबाधित, लोकबाधित और स्ववचनबाधित—ये चार^९ भेद गिनाये हैं। असिद्ध, विरुद्ध और अनैकान्तिक तीन^{१०} हेत्वाभासों तथा छह साधर्म्य और छह^{११} वैधर्म्य कुल बारह दृष्टान्ताभासोंका भी कथन किया है। ध्यातव्य है कि साध्यविकल, साधनविकल और उभयविकल ये तीन साधर्म्य-दृष्टान्ताभास तथा साध्याव्यावृत्त साधनाव्यावृत्त और उभयाव्यावृत्त ये तीन वैधर्म्यदृष्टान्ताभास तो प्रशस्त-

१. वही, पृ० ४।

२. न्यायप्र०, नृ० ७।

३. मी० श्लोक, अनु०, श्लोक० ५८-६९, १०८।

४. न्यायरत्ना०, मी० श्लोक०, अनु०, ५८-६९, १०८।

५. मी० श्लो०, अनु० परि०, श्लोक ७०, तथा व्याख्या।

६. वही, अनु० परि०, श्लोक ९२ तथा व्याख्या।

७. माठरवृ० का० ५।

८. न्यायाव० का० १३, २१-२५।

९-१०. वही, का० २१।

११. वही, का० २२, २३।

१२. वही, का० २४, २५।

पादभाष्य और न्यायप्रवेश जैसे ही हैं किन्तु सन्दिग्धसाध्य, सन्दिग्धसाधन और सन्दिग्धोभय ये तीन साधर्म्यदृष्टान्ताभास तथा सन्दिग्धसाध्यव्यावृत्ति, सन्दिग्धसाधनव्यावृत्ति और सन्दिग्धोभयव्यावृत्ति ये तीन वैधर्म्यदृष्टान्ताभास न प्रशस्तपादभाष्यमें हैं^१ और न न्यायप्रवेशमें।^२ प्रशस्तपादभाष्यमें आश्रयासिद्ध, अननुगत और विपरीतानुगत ये तीन साधर्म्य तथा आश्रयासिद्ध, अव्यावृत्त और विपरीतव्यावृत्त ये तीन वैधर्म्य-निदर्शनाभास हैं। और न्यायप्रवेशमें अनन्वय तथा विपरीतान्वय ये दो साधर्म्य और अव्यतिरेक तथा विपरीतव्यतिरेक ये दो वैधर्म्य दृष्टान्ताभास उपलब्ध हैं। पर हाँ, धर्मकीतिके न्यायविन्दुमें^३ उनका प्रतिपादन मिलता है। धर्मकीतिने सन्दिग्धसाध्यादि उक्त तीन साधर्म्यदृष्टान्ताभासों और सन्दिग्धव्यतिरेकादि तीन वैधर्म्यदृष्टान्ताभासोंका स्पष्ट निरूपण किया है। इसके अतिरिक्त धर्मकीतिने न्यायप्रवेशगत अनन्वय, विपरीतान्वय, अव्यतिरेक और विपरीतव्यतिरेक इन चार साधर्म्य-वैधर्म्य दृष्टान्ताभासोंको अपनाते हुए अप्रदर्शितान्वय और अप्रदर्शितव्यतिरेक इन दो नये दृष्टान्ताभासोंको और सम्मिलित करके नव-नव साधर्म्य-वैधर्म्य दृष्टान्ताभास प्रतिपादित किये हैं।

अकलंकने^४ पक्षाभासके उक्त सिद्ध और बाधित दो भेदोंके अतिरिक्त अनिष्ट नामक तीसरा पक्षाभास भी वर्णित किया है। जब साध्य शक्य (अबाधित), अभिप्रेत (इष्ट) और असिद्ध होता है तो उसके दोष भी बाधित, अनिष्ट और सिद्ध ये तीन कहे जाएँगे। हेत्वाभासोंके सम्बन्धमें उनका मत है कि जैन न्यायमें हेतु न त्रिरूप है और न पाँच-रूप, किन्तु एकमात्र अन्यथानुपपन्नत्व (अविनाभाव) रूप है। अतः उसके अभावमें हेत्वाभास एक ही है और वह है अकिंचित्कर। असिद्ध, विरुद्ध और अनैकान्तिक ये उसीका विस्तार हैं। दृष्टान्तके विषयमें उनकी मान्यता है कि वह सर्वत्र आवश्यक नहीं है। जहाँ वह आवश्यक है वहाँ उसका और उसके साध्यविकलादि दोषोंका कथन किया जाना योग्य है।

माणिक्यनन्दि^५, देवसूरि^६, हेमचन्द्र आदि जैन तार्किकोंने प्रायः सिद्धसेन और अकलंकका ही अनुसरण किया है।

इस प्रकार भारतीय तर्कग्रन्थोंके साथ जैन तर्कग्रन्थोंमें भी अनुमानस्वरूप, अनुमानभेदों, अनुमानांगों, अनुमानावयवों और अनुमानदोषोंपर पर्याप्त चिन्तन उपलब्ध है।

जैन अनुमानकी उपलब्धियाँ

यहाँ जैन अनुमानकी उपलब्धियोंका निर्देश किया जायेगा, जिससे भारतीय अनुमानको जैन तार्किकों की क्या देन है, उन्होंने उसमें क्या अभिवृद्धि या संशोधन किया है, यह समझनेमें सहायता मिलेगी।

अध्ययनसे अवगत होता है कि उपनिषद् कालमें अनुमानकी आवश्यकता एवं प्रयोजनपर भार दिया जाने लगा था, उपनिषदोंमें 'आत्मा बाहरे द्रष्टव्यः ओतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः'^७ आदि वाक्यों द्वारा आत्माके श्रवणके साथ मननपर भी बल दिया गया है, जो उपपत्तियों

१. प्रश० भा०. पृ० १२३।

२. न्यायप्र०, पृ० ५-७।

३. न्याय० बि०, तृ० परि० पृष्ठ ९४-१०२।

४. न्यायविनि०, का० १७२, २९९, ३६५, ३६६, ३७०, ३८१।

५. परीक्षामु० ६।१२-५०।

६. प्रमाणन०, ६।३८-८२।

७. प्रमाणमी०, १।२।१४, २।१।१६-२७।

८. बृहदारण्य० २।४।५।

(युक्तियों) के द्वारा किया जाता था ।^१ इससे स्पष्ट है कि उस कालमें अनुमानको भी श्रुतिकी तरह ज्ञानका एक साधन माना जाता था—उसके बिना दर्शन अपूर्ण रहता था । यह सच है कि अनुमानका ‘अनुमान’ शब्दसे व्यवहार होनेकी अपेक्षा ‘वाकोवाक्यम्’ ‘आन्वीक्षिकी’, ‘तर्कविद्या’, ‘हेतुविद्या’ जैसे शब्दों द्वारा अधिक होता था ।

प्राचीन जैन वाङ्मयमें ज्ञानमीमांसा (ज्ञानमार्गणा) के अन्तर्गत अनुमानका ‘हेतुवाद’ शब्दसे निर्देश किया गया है और उसे श्रुतका एक पर्याय (नामान्तर) बतलाया गया है । तत्त्वार्थसूत्रकारने उसे अभिनिबोध नामसे उल्लेखित किया है । तात्पर्य यह है कि जैन दर्शनमें भी अनुमान अभिमत है तथा प्रत्यक्ष (सांख्यव-हारिक और पारमाधिक ज्ञानों) की तरह उसे भी प्रमाण एवं अर्थनिश्चायक माना गया है । अन्तर केवल उनमें वैशद्य और अवैशद्यका है । प्रत्यक्ष विशद है और अनुमान अविशद (परोक्ष) ।

अनुमानके लिए किन घटकोंकी आवश्यकता है, इसका आरम्भिक प्रतिपादन कणादने किया प्रतीत होता है । उन्होंने अनुमानका ‘अनुमान’ शब्दसे निर्देश न कर ‘लैङ्गिक’ शब्दसे किया है, जिससे ज्ञात होता है कि अनुमानका मुख्य घटक लिङ्ग है । सम्भवतः इसी कारण उन्होंने मात्र लिङ्गों, लिङ्गरूपों और लिङ्गा-भाषोंका निरूपण किया है, उसके और भी कोई घटक है इसका कणादने कोई उल्लेख नहीं किया । उनके भाष्यकार प्रशस्तपादने अवश्य प्रतिज्ञादि पाँच अवयवोंको उसका घटक प्रतिपादित किया है ।

तर्कशास्त्रका निबद्धरूपमें स्पष्ट विकास अक्षपादके न्यायसूत्रमें उपलब्ध होता है । अक्षपादने अनुमानको ‘अनुमान’ शब्दसे ही उल्लेखित किया तथा उसकी कारणसामग्री, भेदों, अवयवों और हेतुभासोंका स्पष्ट विवेचन किया है । साथ ही अनुमानपरीक्षा, वाद, जल्प, वितण्डा, छल, जाति, निग्रहस्थान जैसे अनुमान-सहायक तत्त्वोंका प्रतिपादन करके अनुमानको शास्त्रार्थोपयोगी और एक स्तर तक पहुँचा दिया है । वास्त्या-यन, उद्योतकर, वाचस्पति, उदयन और गङ्गेशने उसे विशेष परिष्कृत किया तथा व्याप्ति, पक्षधर्मता, परामर्श जैसे तदुपयोगी अभिनव तत्त्वोंको विविक्त करके उनका विस्तृत एवं सूक्ष्म निरूपण किया है । वस्तुतः अक्षपाद और उनके अनुवर्ती तार्किकोंने अनुमानको इतना परिष्कृत किया कि उनका दर्शन न्याय (तर्क—अनुमान) दर्शनके नामसे ही विश्रुत हो गया ।

असंग, बसुबन्धु, दिङ्नाग, धर्मकीर्ति प्रभृति बौद्ध तार्किकोंने न्यायदर्शनकी समालोचनापूर्वक अपनी विशिष्ट और नयी मान्यताओंके आधारपर अनुमानका सूक्ष्म और प्रचुर चिन्तन प्रस्तुत किया है । इनके चिन्तनका अवश्यम्भावी परिणाम यह हुआ कि उत्तरकालीन समग्र भारतीय तर्कशास्त्र उससे प्रभावित हुआ और अनुमानकी विचारधारा पर्याप्त आगे बढ़नेके साथ सूक्ष्म-से-सूक्ष्म एवं जटिल होती गयी । वास्तवमें बौद्ध तार्किकोंके चिन्तनने तर्कमें आयी कुण्ठाको हटाकर और सभी प्रकारके परिवेशोंको दूर कर उन्मुक्तभाव-से तत्त्वचिन्तनकी क्षमता प्रदान की । फलतः सभी दर्शनोंमें स्वीकृत अनुमानपर अधिक विचार हुआ और उसे महत्त्व मिला ।

ईश्वरकृष्ण, युक्तिदीपिकाकार, माठर, विज्ञानभिक्षु आदि सांख्यविद्वानों, प्रभाकर, कुमारिल, पार्थ-सारथि प्रभृति मीमांसकचिन्तकोंने भी अपने-अपने ढंगसे अनुमानका चिन्तन किया है । हमारा विचार है कि इन चिन्तकोंका चिन्तन-विषय प्रकृति-पुरुष और क्रियाकाण्ड होते हुए भी वे अनुमान-चिन्तनसे अछूते नहीं रहे । श्रुतिके अलावा अनुमानको भी इन्हें स्वीकार करना पड़ा और उसका कम-बढ़ विवेचन किया है ।

१. श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः ।

मत्वा च सततं ध्येय एते दर्शनहेतवः ॥

जैन विचारक ती आरम्भसे ही अनुमानको मानते आये हैं। भले ही उसे 'अनुमान' नाम न देकर 'हेतुवाद' या 'अभिनिबोध' संज्ञासे उन्होंने उसका व्यवहार किया हो। तत्त्वज्ञान, स्वतत्त्वसिद्धि, परपक्षदूषणोद्भावकके लिए उसे स्वीकार करके उन्होंने उसका पर्याप्त विवेचन किया है। उनके चिन्तनमें जो विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं उनमें कुछका उल्लेख यहाँ किया जाता है :—

अनुमानका परोक्षप्रमाणमें अन्तर्भाव :

अनुमानप्रमाणवादी सभी भारतीय तार्किकोंने अनुमानको स्वतन्त्र प्रमाण स्वीकार किया है। पर जैन तार्किकोंने उसे स्वतन्त्र प्रमाण नहीं माना। प्रमाणके उन्होंने मूलतः दो भेद माने हैं—(१) प्रत्यक्ष और (२) परोक्ष। हम पीछे इन दोनोंकी परिभाषाएँ अङ्कित कर आये हैं। उनके अनुसार अनुमान परोक्ष प्रमाणमें अन्तर्भूत है, क्योंकि वह अविशद ज्ञान है और उसके द्वारा अप्रत्यक्ष अर्थकी प्रतिपत्ति होती है। परोक्ष प्रमाणका क्षेत्र इतना व्यापक और विशाल है कि स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अर्थापत्ति, सम्भव, अभाव और शब्द जैसे अप्रत्यक्ष अर्थके परिच्छेदक अविशद ज्ञानोका इसीमें समावेश है। तथा वैशद्य एवं अवैशद्यके आधारपर स्वीकृत प्रत्यक्ष और परोक्षके अतिरिक्त अन्य प्रमाण मान्य नहीं हैं।

अर्थापत्ति अनुमानसे पृथक् नहीं :

प्राभाकर और भाट्ट मीमांसक अनुमानसे पृथक् अर्थापत्ति नामका स्वतन्त्र प्रमाण मानते हैं। उनका मन्तव्य है कि जहाँ अमुक अर्थ अमुक अर्थके बिना न होता हुआ उसका परिकल्पक होता है वहाँ अर्थापत्ति प्रमाण माना जाता है।—जैसे **पोनोऽयं देवदत्तो दिवा न भुंक्ते** इस वाक्यमें, उक्त 'पोनत्व' अर्थ 'भोजन' के बिना न होता हुआ 'रात्रिभोजन' की कल्पना करता है, क्योंकि दिवा भोजनका निषेध वाक्यमें स्वयं घोषित है। इस प्रकारके अर्थका बोध अनुमानसे न होकर अर्थापत्तिसे होता है। किन्तु जैन विचारक उसे अनुमानसे भिन्न स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि अनुमान अन्यथानुपपन्न (अविनाभावी) हेतुसे उत्पन्न होता है और अर्थापत्ति अन्यथानुपपद्यमान अर्थसे। अन्यथानुपपन्न हेतु और अन्यथानुपपद्यमान अर्थ दोनों एक हैं—उनमें कोई अन्तर नहीं है। अर्थात् दोनों ही व्याप्तिविशिष्ट होनेसे अभिन्न हैं। डा० देवराज भी यही बात प्रकट करते हुए कहते हैं कि 'एक वस्तु द्वारा दूसरी वस्तुका आक्षेप तभी हो सकता है जब दोनोंमें व्याप्यव्यापकभाव या व्याप्तिसम्बन्ध हो'। देवदत्त मोटा है और दिनमें खाता नहीं है, यहाँ अर्थापत्ति द्वारा रात्रिभोजनकी कल्पना की जाती है। पर वास्तवमें मोटापन भोजनका अविनाभावी होने तथा दिनमें भोजनका निषेध करनेसे वह देवदत्तके रात्रिभोजनका अनुमापक है। वह अनुमान इस प्रकार है—**देवदत्तः रात्रौ भुंक्ते, दिवाऽभोजित्वे सति पोतत्वाग्न्यथानुपपत्तेः।** यहाँ अन्यथानुपपत्तिसे अन्तर्व्याप्ति विवक्षित है, बहिर्व्याप्ति या सकलव्याप्ति नहीं, क्योंकि ये दोनों व्याप्तियाँ अव्यभिचरित नहीं हैं। अतः अर्थापत्ति और अनुमान दोनों व्याप्तिपूर्वक होनेसे एक ही हैं—पृथक्-पृथक् प्रमाण नहीं।

अनुमानका विशिष्ट स्वरूप :

न्यायसूत्रकार अक्षपादकी 'तत्पूर्वकमनुमानम्', प्रशस्तपादकी 'लिङ्गदर्शनात्संज्ञायमानं लङ्गिकम्' और उद्योतकरकी 'लिङ्गपरामर्शोऽनुमानम्' परिभाषाओंमें केवल कारणका निर्देश है, अनुमानके स्वरूपका नहीं। उद्योतकरकी एक अन्य परिभाषा 'लङ्गिकी प्रतिपत्तिरनुमानम्' में भी लिङ्गरूप कारणका उल्लेख है, स्वरूप

का नहीं। दिङ्नागशिष्य शङ्करस्वामीकी 'अनुमान लिङ्गावर्धनम्' परिभाषामें यद्यपि कारण और स्वरूप दोनोंकी अभिव्यक्ति है, पर उसमें कारणके रूपमें लिङ्गको सूचित किया है, लिङ्गके ज्ञानको नहीं। तथ्य यह है कि अज्ञायमान धूमादि लिङ्ग अग्नि आदिके अनुमापक नहीं हैं। अन्यथा जो पुरुष सोया हुआ है, मूर्च्छित है, अगूहीतव्याप्तिक है उसे भी पर्वतमें धूमके सद्भाव मात्रसे अग्निका अनुमान हो जाना चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं है। अतः शंकरस्वामीके उक्त अनुमानलक्षणमें 'लिङ्गात्' के स्थानमें 'लिङ्गवर्शनात्' पद होनेपर ही वह पूर्ण अनुमानलक्षण हो सकता है।

जैन तार्किक अकलंकदेवने जो अनुमानका स्वरूप प्रस्तुत किया है वह उक्त न्यूनताओंसे मुक्त है। उनका लक्षण है—

लिङ्गात्साध्याविनाभावाभिनिबोधैकलक्षणात् ।

लिङ्गिधीरनुमानं तत्फलं हानादिवुद्धयः ॥

इसमें अनुमानके साक्षात्कारण—लिङ्गज्ञानका भी प्रतिपादन है और उसका स्वरूप भी 'लिङ्गिधीः' शब्दके द्वारा निर्दिष्ट है। अकलंकने स्वरूपनिर्देशमें केवल 'धीः' या 'प्रतिपत्ति' नहीं कहा, किन्तु 'लिङ्गिधीः' कहा है, जिसका अर्थ है साध्यका ज्ञान; और साध्यका ज्ञान होना ही अनुमान है। न्यायप्रवेशकार शंकर-स्वामीने साध्यका स्थानापन्न 'अर्थ' का अवश्य निर्देश किया है। पर उन्होंने कारणका निर्देश अपूर्ण किया है, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। अकलंकके इस लक्षणकी एक विशेषता और भी है। वह यह कि उन्होंने 'तत्फलं हानादिवुद्धयः' शब्दों द्वारा अनुमानका फल भी निर्दिष्ट किया है। सम्भवतः इन्हीं सब बातोंसे उत्तरवर्ती सभी जैन तार्किकोंने अकलंककी इस प्रतिष्ठित और पूर्ण अनुमान-परिभाषाको ही अपनाया। इस अनुमानलक्षणसे स्पष्ट है कि वही साधन अथवा लिङ्ग लिङ्ग (साध्य—अनुमेय) का गमक हो सकता है जिसके अविनाभावका निश्चय है। यदि उसमें अविनाभावका निश्चय नहीं है तो वह साधन नहीं है, भले ही उसमें तीन या पाँच रूप भी विद्यमान हों। जैसे 'वज्रलोहलेख्य हैं, क्योंकि पार्थिव है, काष्ठकी तरह' इत्यादि हेतु तीन रूपों और पाँच रूपोंसे सम्पन्न होनेपर भी अविनाभावके अभावे सद्घेतु नहीं हैं, अपितु हेत्वाभास हैं और इसीसे वे अपने साध्योंके अनुमापक नहीं माने जाते। इसी प्रकार एक मुहूर्त बाद शकटका उदय होगा, क्योंकि कृत्तिकाका उदय हो रहा है', 'समुद्रमें वृद्धि होना चाहिए अथवा कुमुदोंका विकास होना चाहिए, क्योंकि चन्द्रका उदय है' आदि हेतुओंमें पक्षधर्मत्व न होनेसे न त्रिरूपता है और न पंचरूपता। फिर भी अविनाभावके होनेसे कृत्तिकाका उदय शकटोदयका और चन्द्रका उदय समुद्रवृद्धि एवं कुमुदविकासका गमक है।

हेतुका एकलक्षण (अन्यथानुपपन्नत्व) स्वरूप :

हेतुका स्वरूपका प्रतिपादन अक्षपादसे आरम्भ होता है, ऐसा अनुसन्धानसे प्रतीत होता है। उनका वह लक्षण साधर्म्य और वैधर्म्य दोनों दृष्टान्तोंपर आधारित है। अत एव नैयायिक चिन्तकोंने उसे द्विलक्षण, त्रिलक्षण, चतुर्लक्षण और पंचलक्षण प्रतिपादित किया तथा उसकी व्याख्याएँ की हैं। वैशेषिक, बौद्ध, सांख्य आदि विचारकोंने उसे मात्र त्रिलक्षण बतलाया है। कुछ तार्किकोंने षड्लक्षण और सप्तलक्षण भी उसे कहा है, जैसा कि हम हेतुलक्षण प्रकरणमें पीछे देख आये हैं। पर जैन लेखकोंने अविनाभावको ही हेतुका प्रधान और एकलक्षण स्वीकार किया है तथा त्रैरूप्य, पांचरूप्य आदिको अव्याप्त और अतिव्याप्त बतलाया है, जैसा कि ऊपर अनुमानके स्वरूपमें प्रदर्शित उदाहरणोंसे स्पष्ट है। इस अविनाभावको ही अन्यथानुपपन्नत्व अथवा अन्यथानुपपत्ति या अन्तर्व्याप्ति कहा है। स्मरण रहे कि यह अविनाभाव या अन्यथानुपपन्नत्व जैन लेखकोंकी ही उपलब्धि है, जिसके उद्भावक आचार्य समन्तभद्र हैं, यह हम पीछे विस्तारके साथ कह आये हैं।

अनुमानका अङ्ग एकमात्र व्याप्ति :

न्याय, वैशेषिक, सांख्य, मीमांसक और बौद्ध सभीने पक्षधर्मता और व्याप्ति दोनोंको अनुमानका अंग माना है। परन्तु जैन तार्किकोंने केवल व्याप्तिको उसका अंग बतलाया है। उनका मत है कि अनुमानमें पक्षधर्मता अनावश्यक है। 'उपरि वृष्टिरभूत् अधोपूरान्यथानुपपत्तेः' आदि अनुमानोंमें हेतु पक्षधर्म नहीं है फिर भी व्याप्तिके बलसे वह गमक है। 'स इयामस्तनुप्रवृत्तादितरतत्पुत्रवत्' इत्यादि असद् अनुमानोंमें हेतु पक्षधर्म है किन्तु अविनाभाव न होनेसे वे अनुमापक नहीं हैं। अतः जैन चिन्तक अनुमानका अंग एकमात्र व्याप्ति (अविनाभाव) को ही स्वीकार करते हैं, पक्षधर्मताको नहीं।

पूर्वचर, उत्तरचर और सहचर हेतुओंकी परिकल्पना :

अकलङ्कदेवने कुछ ऐसे हेतुओंकी परिकल्पना की है जो उनसे पूर्व नहीं माने गये थे। उनमें मुख्यतया पूर्वचर, उत्तरचर और सहचर ये तीन हेतु हैं। इन्हें किसी अन्य तार्किकने स्वीकार किया हो, यह ज्ञात नहीं। किन्तु अकलङ्कने इनकी आवश्यकता एवं अतिरिक्तताका स्पष्ट निर्देश करते हुए स्वरूप प्रतिपादन किया है। अतः यह उनकी देन कही जा सकती है।

प्रतिपाद्योंकी अपेक्षा अनुमान-प्रयोग

अनुमानप्रयोगके सम्बन्धमें जहाँ अन्य भारतीय दर्शनोंमें व्युत्पन्न और अव्युत्पन्न प्रतिपाद्योंकी विवक्षा किये बिना अवयवोंका सामान्य कथन मिलता है वहाँ जैन विचारकोंने उक्त प्रतिपाद्योंकी अपेक्षा उनका विशेष प्रतिपादन भी किया है। व्युत्पन्नोके लिए उन्होंने पक्ष और हेतु ये दो अवयव आवश्यक बतलाये हैं। उन्हें दृष्टान्त आवश्यक नहीं है। 'सर्व क्षणिकं सत्त्वात्' जैसे स्थलोंमें बौद्धोंने और 'सर्वमभिधेयं प्रमेयत्वात्' जैसे केवलान्वयिहेतुक अनुमानोंमें नैयायिकोंने भी दृष्टान्तको स्वीकार नहीं किया। अव्युत्पन्नोके लिए उक्त दोनों अवयवोंके साथ दृष्टान्त, उपनय और निगमन इन तीन अवयवोंकी भी जैन चिन्तकोंने यथायोग्य आवश्यकता प्रतिपादित की है। इसे और स्पष्ट यों समझिए—

गृद्धपिच्छ, समन्तभद्र, पूज्यपाद और सिद्धसेनके प्रतिपादनोसे अवगत होता है कि आरम्भमें प्रतिपाद्यसामान्यकी अपेक्षासे पक्ष, हेतु और दृष्टान्त इन तीन अवयवोंसे अभिप्रेतार्थ (साध्य) की सिद्धि की जाती थी। पर उत्तरकालमें अकलङ्कका संकेत पाकर कुमारनन्दि और विद्यानन्दने प्रतिपाद्योंको व्युत्पन्न और अव्युत्पन्न दो वर्गोंमें विभक्त करके उनकी अपेक्षासे पृथक्-पृथक् अवयवोंका कथन किया। उनके बाद माणिक्यनन्दि, देवसूरि आदि परवर्ती जैन ग्रन्थकारोंने उनका समर्थन किया और स्पष्टतया व्युत्पन्नोके लिए पक्ष और हेतु ये दो तथा अव्युत्पन्नोके बोधार्थ उक्त दोके अतिरिक्त दृष्टान्त, उपनय और निगमन ये तीन सब मिलाकर पाँच अवयव निरूपित किये। भद्रबाहुने प्रतिज्ञा, प्रतिज्ञाशुद्धि आदि दश अवयवोंका भी उपदेश दिया, जिसका अनुसरण देवसूरि, हेमचन्द्र और यशोविजयने किया है।

व्याप्तिका ग्राहक एकमात्र तर्क :

अन्य भारतीय दर्शनोंमें भूयोदर्शन, सहचारदर्शन और व्यभिचाराग्रहको व्याप्तिग्राहक माना गया है। न्यायदर्शनमें वाचस्पति और सांख्यदर्शनमें विज्ञानभिक्षु इन दो तार्किकोंने व्याप्तिग्रहकी उपर्युक्त सामग्रीमें तर्कको भी सम्मिलित कर लिया। उनके बाद उदयन, गंगेश, वर्द्धमान प्रभृति तार्किकोंने भी उसे व्याप्तिग्राहक मान लिया। पर स्मरण रहे, जैन परम्परामें आरम्भसे तर्कको, जिसे चिन्ता, ऊहा आदि शब्दोंसे व्यवहृत किया गया है, अनुमानकी एकमात्र सामग्रीके रूपमें प्रतिपादित किया है। अकलङ्क ऐसे जैन

तार्किक है जिन्होंने वाचस्पति और विज्ञानभिक्षुसे पूर्व सर्व प्रथम तर्कको व्याप्तिग्राहक समर्थित एवं सम्पुष्ट किया तथा सबलतासे उसका प्रामाण्य स्थापित किया। उनके पश्चात् सभीने उसे व्याप्तिग्राहक स्वीकार कर लिया।

तथोपपत्ति और अन्यथानुपपत्ति :

यद्यपि बहिर्व्याप्ति, सकलव्याप्ति और अन्तर्व्याप्तिके भेदसे व्याप्तिके तीन भेदों, समव्याप्ति और विषमव्याप्तिके भेदसे उसके दो प्रकारों तथा अन्वयव्याप्ति और व्यतिरेकव्याप्ति इन दो भेदोंका वर्णन तर्कग्रन्थोंमें उपलब्ध होता है किन्तु तथोपपत्ति और अन्यथानुपपत्ति इन दो व्याप्तिप्रकारों (व्याप्तिप्रयोगों) का कथन केवल जैन तर्कग्रन्थोंमें पाया जाता है। इनपर ध्यान देनेपर जो विशेषता ज्ञात होती है वह यह है कि अनुमान एक ज्ञान है उसका उपादान कारण ज्ञान ही होना चाहिए। तथोपपत्ति और अन्यथानुपपत्ति ये दोनों ज्ञानात्मक हैं, जब कि उपर्युक्त व्याप्तियाँ ज्ञेयात्मक (विषयात्मक) हैं। दूसरी बात यह है कि उक्त व्याप्तियोंमें एक अन्तर्व्याप्ति ही ऐसी व्याप्ति है, जो हेतुकी गमकतामें प्रयोजक है, अन्य व्याप्तियाँ अन्तर्व्याप्तिके बिना अव्याप्त और अतिव्याप्त हैं, अतएव वे साधक नहीं हैं। तथा यह अन्तर्व्याप्ति ही तथोपपत्ति और अन्यथानुपपत्तिरूप है अथवा उनका विषय है। इन दोनोंमेंसे किसी एकका ही प्रयोग पर्याप्त है। इनका विशेष विवेचन अन्यत्र किया गया है।

साध्याभास :

अकलङ्कने अनुमानाभासोंके विवेचनमें पक्षाभास या प्रतिज्ञाभासके स्थानमें साध्याभास शब्दका प्रयोग किया है। अकलङ्कके इस परिवर्तनके कारणपर सूक्ष्म ध्यान देनेपर अवगत होता है कि चूँकि साधनका विषय (गम्य) साध्य होता है और साधनका अविनाभाव (व्याप्तिसम्बन्ध) साध्यके ही साथ होता है, पक्ष या प्रतिज्ञाके साथ नहीं, अतः साधनाभास (हेत्वाभास) का विषय साध्याभास होनेसे उसे ही साधनाभासोंकी तरह स्वीकार करना युक्त है। विद्यानन्दने अकलङ्ककी इस सूक्ष्म दृष्टिको परखा और उनका सयुक्तिक समर्थन किया। यथार्थमें अनुमानके मुख्य प्रयोजक साधन और साध्य होनेसे तथा साधनका सीधा सम्बन्ध साध्यके साथ ही होनेसे साधनाभासकी भाँति साध्याभास ही विवेचनीय है। अकलङ्कने शक्य, अभिप्रेत और असिद्धको साध्य तथा अशक्य, अनभिप्रेत और सिद्धको साध्याभास प्रतिपादित किया है—(साध्यं शक्यमभिप्रेतमप्रसिद्धं ततोऽपरम् । साध्याभासं विरुद्धादि साधनाविषयत्वतः ॥)

अकिञ्चित्कर हेत्वाभास :

हेत्वाभासोंके विवेचन-सन्दर्भमें सिद्धसेनने कणाद और न्यायप्रवेशकारकी तरह तीन हेत्वाभासोंका कथन किया है, अक्षपादकी भाँति उन्होंने पाँच हेत्वाभास स्वीकार नहीं किये। प्रश्न हो सकता है कि जैन तार्किक हेतुका एक (अविनाभाव—अन्यथानुपपन्नत्व) रूप मानते हैं, अतः उसके अभावमें उनका हेत्वाभास एक ही होना चाहिए। वैशेषिक, बौद्ध और सांख्य तो हेतुको त्रिरूप तथा नैयायिक पंचरूप स्वीकार करते हैं, अतः उनके अभावमें उनके अनुसार तीन और पाँच हेत्वाभास तो युक्त हैं। पर सिद्धसेनका हेत्वाभास-त्रैविध्य प्रतिपादन कैसे युक्त है? इसका समाधान सिद्धसेन स्वयं करते हुए कहते हैं कि चूँकि अन्यथानुपपन्नत्वका अभाव तीन तरहसे होता है—कहीं उसकी प्रतीति न होने, कहीं उसमें सन्देह होने और कहीं उसका विपर्यास होनेसे; प्रतीति न होनेपर असिद्ध, सन्देह होनेपर अनैकान्तिक और विपर्यास होनेपर विरुद्ध ये तीन हेत्वाभास होते हैं।

अकलङ्क कहते हैं कि यथार्थमें हेत्वाभास एक ही है और वह है अकिञ्चित्कर, जो अन्यथानुपपन्नत्व-के अभावमें होता है। वास्तवमें अनुमानका उत्पापक अविनाभावो हेतु ही है, अतः अविनाभाव (अन्यथानुपपन्नत्व) के अभावमें हेत्वाभासकी सृष्टि होती है। यतः हेतु एक अन्यथानुपपन्नरूप ही है, अतः उसके अभावमें मूलतः एक ही हेत्वाभास मान्य है और वह है अन्यथा उपपन्नत्व अर्थात् अकिञ्चित्कर। असिद्धादि उसीका विस्तार हैं। इस प्रकार अकलङ्कके द्वारा 'अकिञ्चित्कर' नामके नये हेत्वाभासकी परिकल्पना उनकी अन्यतम उपलब्धि है।

बालप्रयोगाभास :

माणिक्यनन्दिने आभासोंका विचार करते हुए अनुमानाभाससन्दर्भमें एक 'बालप्रयोगाभास' नामके नये अनुमानाभासकी चर्चा प्रस्तुत की है। इस प्रयोगाभासका तात्पर्य यह है कि जिस मन्दप्रज्ञको समझानेके लिए तीन अवयवोंकी आवश्यकता है उसके लिए दो ही अवयवोंका प्रयोग करना, जिसे चारकी आवश्यकता है उसे तीन और जिसे पाँचकी जरूरत है उसे चारका ही प्रयोग करना अथवा विपरीत क्रमसे अवयवोंका कथन करना बालप्रयोगाभास हैं और इस तरह वे चार (द्वि-अवयवप्रयोगाभास, त्रि-अवयवप्रयोगाभास, चतुरवयवप्रयोगाभास और विपरीतावयवप्रयोगाभास) सम्भव हैं। माणिक्यनन्दिसे पूर्व इनका कथन दृष्टि-गोचर नहीं होता। अतः इनके पुरस्कर्ता माणिक्यनन्दि प्रतीत होते हैं।

अनुमानमें अभिनिबोध-मतिज्ञानरूपता और श्रुतरूपता :

जैन वाङ्मयमें अनुमानको अभिनिबोधमतिज्ञान और श्रुत दोनों निरूपित किया है। तत्त्वार्थसूत्रकारने उसे अभिनिबोध कहा है जो मतिज्ञानके पर्यायोंमें पठित है। षट्खण्डागमकार भूतबलि-पुष्पदन्तने उसे 'हेतुवाद' नामसे व्यवहृत किया है और श्रुतके पर्यायनामोंमें गिनाया है। यद्यपि इन दोनों कथनोंमें कुछ विरोध-सा प्रतीत होगा। पर विद्यानन्दने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि तत्त्वार्थसूत्रकारने स्वार्थानुमानको अभिनिबोध कहा है, जो वचनात्मक नहीं है और षट्खण्डागमकार तथा उनके व्याख्याकार वीरसेनने परार्थानुमानको श्रुतरूप प्रतिपादित किया है, जो वचनात्मक होता है। विद्यानन्दका यह समन्वयात्मक सूक्ष्म चिन्तन जैन तर्कशास्त्रमें एक नया विचार है जो विशेष उल्लेख्य है। इस उपलब्धिका सम्बन्ध विशेषतया जैन ज्ञान-मीमांसाके साथ है।

इस तरह जैन चिन्तकोंकी अनुमानविषयमें अनेक उपलब्धियाँ हैं। उनका अनुमान-सम्बन्धी चिन्तन भारतीय तर्कशास्त्रके लिए कई नये तत्त्व देता है।